संस्कृत गद्यकाव्य

MAST 108

खण्ड – 1 शुकनासोपदेश

इकाई – 01 गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास

इकाई – 02 महकावि बाणभट्ट का व्यक्तित्व और कृतित्व

इकाई – 03 बाणभट्टकृत गद्यसाहित्य का परिचय, गद्यशैली एवं काव्यसौन्दर्य

इकाई – 04 - शुकनासोपदेश का अनुवाद एवं व्याख्या

('समतिक्रामत्सु' से पताका सर्वविनयानाम्")

इकाई – 05 शुकनासोपदेश का अनुवाद एवं व्याख्या

(उत्पत्तिनिम्नगा से इत्येतावद् अभिधायोपशशाम) तक

इकाई – 06 शुकनासोपदेश से सम्बन्धित आलोचनात्मक प्रश्न

खण्ड - 1

शुकनासोपदेश

इकाई- 1

गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास

प्रस्तावना

गद्यकाव्य एवं गद्यकाव्यकारों का परिचय प्राप्त करने से पूर्व संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य का उद्भव कैसे एवं कब हुआ तथा उसका विकासक्रम क्या था? इसका अध्ययन विद्यार्थियों के लिये आवश्यक होने से गद्यकाव्य के उद्भव एवं विकास का अध्ययन प्रस्तावित है।

उद्देश्य

परास्नातक संस्कृत (MAST) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आपको महाकवि बाणभट्ट की कादम्बरी के 'शुकनासोपदेश' प्रकरण का अध्ययन आपको करना है। गद्यकाव्य के अध्ययन से पूर्व गद्यकाव्य का उद्भव कब और कैसे हुआ; यह ज्ञान आप इस खण्ड में प्राप्त करेंगे। इस गद्यकाव्य के विकास की क्या परम्परा रही है। अनेक गद्यकाव्यकारों में बाणभट्ट की कादम्बरी के शुकनासोपदेश का क्या महत्व है? गद्यकाव्यकारों में बाणभट्ट का क्या स्थान है? यह ज्ञान कराना इस इकाई का उद्देश्य है।

इकाई- 2 के अन्तर्गत महाकवि बाणभट्ट के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है।

इकाई- 3 में बाणभट्ट कृत गद्य साहित्य का उनकी शैलीगत विशेषताओं का और उनकी रचना के काव्यसौष्ठव (सौन्दर्य) से परिचित कराना भी इस अध्ययन का उद्देश्य है।

इकाई- 4 एवं इकाई- 5 में शुकनासोपदेश का अनुवाद एवं व्याख्या तथा उसकी

विशिष्टताओं का ज्ञान कराना इसका उद्देश्य है; इससे आप इस गद्यकाव्य के वैशिष्ट्य को सुगमता से समझ सकेंगे।

गद्यकाव्य सम्बन्धी साहित्यिक सामग्री की दृष्टि से शुकनासोपदेश का अध्ययन नितान्त अपेक्षित है। चन्द्रापीडकथा से कथावस्तु लेकर महाकवि बाणभट्ट ने उसे अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से नवीन कल्पनाओं का समावेश करते हुए उपवृंहित किया है। वर्णनों की सटीकता और सुसम्बद्धता आपके अध्ययन की रुचि में कमी नही आने देगी।

1.1 गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास-

संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य की उत्पत्ति वैदिक युग से दृष्टिगत होती है। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है। संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक दिग्दर्शन हमे ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में मिलता है। वस्तुतः दृश्य एवं श्रव्यकाव्य के रूप में द्विधा विभक्त संस्कृत साहित्य में तीन प्रकार की रचनाएँ दृष्टिगत होती हैं- 1. पद्यकाव्य, 2. गद्यकाव्य, 3. गद्यपद्यमिश्रित काव्य अर्थात् चम्पूकाव्य। **"गद् व्यक्तायां वाचि"** के अर्थ का अनुसरण करने वाला गद्य गद् धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय संयुक्त करने से निष्पन्न हुआ है। इस गद्यकाव्य में पद्य की भाँति छंदों का बन्धन न होने से रस, भाव और भाषा का यथेष्ट परिपाक होता है। महाकवि दण्डी ने इस गद्य का लक्षण **"अपादः पदसन्तानो गद्यम्"** के द्वारा किया है। इस पद्यात्मक बन्ध से रहित होने के कारण ही गद्य को कवियों की कसौटी माना गया है- **"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"** यह लोकोक्ति साहित्य जगत् में प्रचलित है। इस प्रकार जो रचना भाव, भाषा और रस का उत्कर्ष पद्यात्मक बन्ध से रहित होने पर भी पाठक को रसास्वाद करा सकें वही काव्य गद्यकाव्य की श्रेणी में आता है।

1.2 गद्यकाव्य की उत्पत्ति के विषय में विविध मत-

वेदों से गद्य की उत्पत्ति- जर्मन विद्वान् ओल्डेनवर्ग का मानना है कि संस्कृत गद्य की उत्पत्ति ऋग्वेद के सम्वादसूक्तों के मध्य प्रयुक्त गद्यभाग से हुई; जो कालान्तर में लुप्त हो गया; किन्तु अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नही हैं। तथापि यह सत्य है कि गद्य-काव्य का उद्भव वैदिककालीन साहित्य से ही दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत गद्य का प्रयोग हमें कृष्ण यजुर्वेद के गद्यात्मक भाग में दिखाई देता है। गद्य से मिश्रित होने के कारण ही उसे कृष्ण यजुर्वेद की संज्ञा से अभिहित किया गया है। उसके पद्यात्मक भाग को शुक्ल यजुर्वेद कहा गया। "**अनियताक्षरावसानो यजुः**" यह यजुर्वेद का लक्षण भी यजुर्वेद में गद्य के प्रयोग को सूचित करता है। वस्तुतः जहाँ पाद (चरण) का समापन नियताक्षरों में होता है। वह विधा छन्दों पर आधारित होने से पद्य कही जाती है। कृष्ण यजुर्वेद के मन्त्रों का विनियोग (द्रव्य का देवता से सम्बन्ध) गद्यात्मक है। यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं की व्याख्या और अर्थवाद (प्रशंसात्मक) भाग की अधिकांश मात्रा गद्य में ही है। गद्य अर्थात् यजुषों का संग्रह होने से ही इसे यजुर्वेद की संज्ञा से विभूषित किया गया है। वैदिक साहित्य का ब्राह्मणभाग- जिनमें मन्त्रों की व्याख्या की गयी है; वह तो गद्यात्मक ही है।

वैदिक शब्दों की व्याख्या और शब्दकोष प्रस्तुत करने वाला निरुक्त भी गद्य में ही लिखा गया है। इसकी रचना ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व यास्काचार्य द्वारा की गयी थी। आशय यह है कि संस्कृतगद्य की उत्पत्ति का मूल स्रोत वेद है। न केवल यजुर्वेद अपितु अथर्ववेद भी गद्यसाहित्य की झाँकी दिखाता है। इसके काण्ड 15 एवं 16 गद्यांश से भरे हुए हैं। अथर्ववेद का लगभग छठाँ हिस्सा गद्यात्मक है। कतिपय विद्वानों का मत है कि प्रारम्भ में ऋग्वेद भी गद्यात्मक रहा होगा। आगे चलकर कण्ठस्थ करने की सुविधा की दृष्टि से उसका पद्यात्मक भाग अवशिष्ट रहा; शेष भाग लुप्तप्राय हो गया। आशय यह है कि संस्कृत साहित्य में वैदिककाल से ही प्रचुर मात्रा में गद्यसाहित्य की उपलब्धि होती रही है।

संस्कृत गद्यकाव्य का विकास कैसे हुआ इस सम्बन्ध में कोई निर्धारण संभव नहीं है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक अनेक गद्यकाव्यों की रचना हुई होगी; जो सम्प्रति कालगर्त में विलीन हो गये। यह भी संभव है कि बार-बार आक्रमण करने वाले आक्रांताओं ने इस विधा के साहित्य को अधिक क्षति पहुचायी हो; तथापि ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व अष्टाध्यायी के वार्तिककार कात्यायन ने "**लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्**" इस वार्तिक में आख्यायिका के प्रत्यय का लुप् बहुलता से हो- ऐसा कहकर उस काल में 'आख्यायिका' रूप गद्यविधा के होने का सङ्केत दिया है। ईसा से 150 वर्ष पूर्व व्याकरण महाभाष्य की रचना करने वाले पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, और भैमरथी इन तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त गुणाढ्य की बृहत्कथा, नारायण पण्डित का हितोपदेश, विष्णुशर्मा का पञ्चतंत्र, वररुचि की चारुमती कथा का उल्लेख एवं उनके समकालिक धनपाल द्वारा तरंगवती कथा का उल्लेख एवं अन्य अनेक आख्यायिकाओं का प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लेख संस्कृत गद्यकाव्य की प्राचीन और विकास के संकेत प्रस्तुत करता है।

संस्कृत गद्यकाव्य की उत्पत्ति के विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय मतों की संक्षिप्त रूप रेखा निम्नाङ्कित है। वस्तुतः गद्यकाव्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित पाश्चात्य एवं भारतीय मतो का अवलोकन करने से यह ज्ञान होता है कि गद्यकाव्य की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत है; जिनमें कुछ मत इस प्रकार है।

1.3.1 पाश्चात्य मत-

1. ग्रीक मत- ग्रीक विद्वानो का मत है कि भारतीय गद्यकाव्य की उत्पत्ति ग्रीक रचनाओं के अनुकरण पर हुई है।

2. पीटर्सन का मत- इनका मत है कि भारतीय गद्यकाव्य यूनानी गद्यकाव्य के अनुकरण पर विकसित हुए हैं। कुछ भारतीय विद्वान् भी इस मत के समर्थक हैं। जबकि सिल्वालेवी जैसे विद्वान् संस्कृत गद्य को यूनानी गद्य से तुलना के योग्य ही नहीं मानते।

3. प्रो. लाकोटे का मत- इनका मत है कि यूनानी गद्यकाव्य भारतीय संस्कृत गद्यकाव्य से प्रभावित है; अतएव उसका ऋणी है। वस्तुस्थिति यह है कि भाषाशैली हो या रसाभिव्यक्ति, कथावस्तु हो या कथायोजना प्रत्येक दृष्टि से संस्कृत गद्य यूनानी गद्य से पृथक् दृष्टिगोचर होता है। अतः यूनानी गद्यकाव्य का भारतीय गद्यकाव्य पर प्रभाव है; ऐसी चर्चा असङ्गत है।

1.3.2 भारतीय मत-

कतिपय विद्वानों का मत है कि संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव पद्यकाव्य में वर्णित लोककथा के माध्यम से हुआ है। अन्य विद्वानों का मानना है कि गद्यकाव्यों का उद्भव पद्यकाव्यों के समानान्तर क्रमिक विकास द्वारा हुआ है। इनका मत है कि संस्कृत के गद्यकाव्य पद्यकाव्यों की कथा पर आधारित हैं। संस्कृत गद्यकाव्यों में व्याप्त आलङ्कारिकता, नैतिकता एवं प्राकृतिक वर्णनों में पाण्डित्य प्रदर्शन, रसाभिव्यक्ति एवं

कृत्रिमता भी संस्कृत गद्य में पद्यकाव्य के प्रभाव के कारण ही परिलक्षित होती है।

1.3.2.1 वैदिक युग- वैदिक काल से ही साहित्य की पद्यशैली के साथ गद्यशैली भी संस्कृत में समानान्तर रूप से चलती रही। काव्य की दोनों धाराओं को विविध संस्कृतियों भावों एवं प्रकृति ने प्रभावित किया। धार्मिक कृत्यों में स्तुति हेतु जहाँ पद्यशैली का अधिक प्रयोग हुआ; वहीं दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय विषयों के लिये गद्यशैली का अधिक प्रयोग हुआ।

गद्यकाव्य के विकास का क्रम- पद्यशैली की भाँति ही गद्यशैली में भी कालक्रमानुसार विकास और परिवर्तन होता रहा।

1.3.2.2 सूत्रयुग- इस काल में सूत्रशैली के गद्य का विकास हुआ व्याकरण सूत्र, मीमांसासूत्र, योगसूत्र आदि विविध सूत्रसाहित्य इसके उदाहरण है। जो कालान्तर में विवरण या व्याख्या प्रधान हो गया। कथा और आख्यायिका गद्य विधाओं के माध्यम से गद्य में सरसता और अलङ्कारप्रियता का विकास हुआ। फलतः अलङ्कृत शैली का गद्य अस्तित्व में आया।

1.3.2.3 लोककाव्ययुग- जनसाधारण में काव्य के प्रति रुचि जागृत करने हेतु कवियों नें अपनी कथा में श्रीराम और कृष्ण के चरित्र कथन को शामिल किया। कालान्तर में संस्कृत गद्य को लोकप्रियता प्रदान करने हेतु इसके कथानक में राजाओं के चरित्र जैसे उदयन, भैमरथी, वासवदत्ता, यक्ष, विद्याधर, बेताल, नरवाहनदत्त आदि राजकुमारों के चरित्र को सम्मिलित किया। कालान्तर में जैसे पद्यकाव्य में कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष, माघ आदि कवियों ने अलङ्कारबहुलता और कृत्रिमता को प्रश्रय दिया, वैसे ही हरिषेण, दण्डी, सुबन्धु बाणभट्ट पण्डित राज जगन्नाथ आचार्य विश्वेश्वर एवं अम्बिकादत्त व्यास आदि कवियों ने गद्यकाव्य को समासबहुलता, अलङ्कार प्रधानता और कृत्रिमता का आवरण प्रदान किया।

कालान्तर में विविध धर्मों, संस्कृतियों एवं राजनैतिक क्रियाकलापों का समाज में प्रादुर्भाव होने के कारण गद्य में भी कृत्रिमता और परिष्कार आदि का उदय हुआ, वस्तुतः यह परम्परा गद्य एवं पद्य उभयविध काव्यों में विकसित हुई। जैसा कि डॉ. कपिलदेव द्विवेदी जी ने कहा है- "यदि वैदिक हिमगिरि से निकलने वाली पद्यधारा गङ्गा है; तो गद्यधारा यमुना है। और सहृदयहृदय सरस्वती इन दोनों का सङ्गमस्थल

है।"

1.4 संस्कृत गद्यकाव्य के विकास के प्रमुख सोपान-

संसार की सभी भाषाओं में गद्य की मात्रा कम पद्य की मात्रा अधिक दिखाई देती है। संस्कृत गद्यकाव्य के विकास की ओर दृष्टिपात करने पर हमें इसमें पाँच मुख्य सोपान दृष्टिगत होते है। जो इस प्रकार हैं-

1. वैदिक गद्य 2. दार्शनिक गद्य 3. व्याख्यात्मक गद्य 4. लोककथात्मक गद्य 5. पौराणिक गद्य 6. साहित्यिक गद्य।

1.4.1 वैदिक गद्य- भारतवर्ष का प्राचीनतम गद्य हमें वेदों में दिखायी देता है। वैदिक कालीन गद्य का प्रारम्भिक रूप हमें संहिताओं में प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में पद्य को ऋक् और गद्य को यजुः के रूप में मान्यता मिली। आचार्य जैमिनि कहते हैं "**तेषां ऋग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था**"। ये ऋचायें गेय होने के कारण छन्दोमयी होती थी। इस गीतात्मकता के कारण ही 'सामवेद' अस्तित्व में आया। "**गीतिषु सामाख्या**"। जबकि छंदविधान से रहित वैदिकमन्त्र यजुः संज्ञा से विभूषित हुए। "अनियताक्षरावसानो यजुः", "शेषे यजुः", 'गद्यात्मको यजुः' कहकर इनको परिभाषित किया गया है। वस्तुतः 'यजुष्' संज्ञा वाले गद्य का उपयोग वेदमन्त्रों और उनकी विनियोग सम्बन्धी व्याख्या के लिये किया गया। आशय यह है कि वेदों में गद्य को 'यजुष्' कहा गया। इन यजुषों का संग्रहग्रंथ होने से एतद्सम्बद्ध वेद को यजुर्वेद कहा गया। जहाँ अक्षरों के अवसान में छंदविषयक नियम लागू नहीं होता; ऐसे वाक्यों या वेदमंत्रों को यजुष् कहा गया; जिसे कालान्तर में 'गद्य' की संज्ञा से विभूषित किया गया। जिन मंत्रों का उपयोग अध्वर्यु यज्ञ के समय करता है; जिससे कर्म या द्रव्य उस यज्ञसम्बन्धी देवता के साथ संयोजित होते थे; ऐसे वाक्यों को वेदों में यजुष् कहा गया था। जिससे यह सिद्ध होता है कि संस्कृत गद्य का उद्भव वेदों से हुआ। न केवल यजुर्वेद अपितु अथर्ववेद ने भी गद्य के विकास में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया है।

वैदिक गद्य के विकास के क्रम को निम्नाङ्कित प्रकार से समझा जा सकता है-

1.4.1.1 संहिताओं का गद्य-

वैदिक गद्य का प्राचीनतम रूप हमें कृष्णयजुर्वेद के साथ ही शुक्ल यजुर्वेद में भी

दिखायी देता है। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक एवं मैत्रायणी संहिता में हमें वैदिक गद्य के प्राचीन प्रयोग देखने को मिलते हैं। अथर्ववेद के 15वें और सोलहवे अध्याय में प्रचुर मात्रा में गद्य का प्रयोग हुआ है।

यदि हम वैदिक गद्य के स्वरूप पर दृष्टिपात करें; तो वहाँ प्रयुक्त गद्य सरल एवं स्वाभाविक है। इसमें छोटे छोटे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग हुआ है। प्रौढ़ता और समासबाहुल्य का अभाव वैदिक गद्य की चारुता में वृद्धि करता है। वाक्यों में रोचकता है। समास का प्रयोग या तो नहीं है; या नाममात्र का है। इनमें उपमा और रूपक जैसे अलङ्कार जहाँ प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ वे वैदिक गद्य को मनोहारी बना देते है। यजुर्वेद के एक गद्यखण्ड का उदाहरण दर्शनीय है- **"अग्ने व्रतपते व्रतं चारिष्यामि। तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति कर्मणे वां वेद्य नय वाम्।" (शुक्लयजुर्वेद 1/5.6)**

1.4.1.2 ब्राह्मणग्रंथों का गद्य-

यदि हम वैदिक साहित्य के ब्राह्मणग्रंथों के स्वरूप पर विचार करते हैं; तो इन ब्राह्मणग्रंथो में गद्य का सरल एवं सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है। इन ब्राह्मणग्रंथों में कर्मानुष्ठानो (यज्ञों) का विवेचन, विधियाँ तथा वैदिक मन्त्रों की व्याख्या प्राप्त होती है। इसके साथ ही अनेक क्लिष्ट और अस्पष्ट शब्दों की व्युत्पत्ति या अनेक पारम्परिक प्राचीन आख्यानो का वर्णन है; जो कि गद्य में ही है। ब्राह्मणग्रंथों के गद्य की शैली लौकिक संस्कृत के गद्य से भिन्न है। इसके वर्णनों में प्रायः सम्वाद के पुट हैं। भाषा जनसाधारण में प्रयुक्त भाषा जैसी है; जिसमें बीच-बीच में वाक्य के मध्य 'ह', 'वाव', 'खलु', 'वै' इत्यादि निपातों (अव्ययों) का प्रयोग हुआ है। समासरहित सरल गद्यशैली का प्रयोग इसके वर्णन को सहज बना देता है। इनमें प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मणग्रंथों का गद्य पाणिनीय नियमों का अनुकरण नहीं करता; जिससे इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। सभी वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध ब्राह्मणग्रंथों में गद्य का प्रमुखता प्रयोग हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण का एक अंश द्रष्टव्य है- **"हरिश्चन्द्रो ह वै ऐक्ष्वाको राजपुत्र आस तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे।" (ऐतरेय ब्रा. 7.3)**

इसी प्रकार यजुर्वेद से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण का एक अन्य उदाहरण भी दर्शनीय है- **"वाग्वै मनसो ह्सीयसी। अपरिमिततरमिव हि मनः परिमिततरेव हि वाक्।"**

1.4.1.3 आरण्यको का गद्य-

वैदिक साहित्य के तृतीय भाग के रूप में विख्यात ग्रंथ आरण्यक साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। अरण्य में लिखे जाने से तथा अरण्यों में पढे जाने से ही इन्हें आरण्यक कहा गया। इन ग्रंथों में कर्मकाण्ड की प्रधानता न होकर ज्ञानकाण्ड की प्रधानता दृष्टिगत होती है। यह साहित्य भी गद्यमय है। इनकी भाषा सरल है। ये लौकिक संस्कृत के गद्य के अधिक निकट हैं। यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण ब्राह्मणग्रंथ और आरण्यक का मिलित अंश है, जो 100 अध्यायों में लिखा गया संस्कृत गद्य का उदाहरणभूत ग्रंथ है।

1.4.1.4 उपनिषदों का गद्य-

ब्राह्मणग्रंथों का अंतिम अध्याय 'उपनिषद्' कहा गया। यह आध्यात्मिक रहस्यों को गद्य को माध्यम से प्रस्तुत करने वाले ग्रंथ है। इन उपनिषदों की संख्या यद्यपि सौ से अधिक मानी गयी है; तथापि मुख्य उपनिषदे 13 मानी गयी हैं। इन उपनिषदों में आरण्यकग्रंथों में वर्णित ज्ञानकाण्ड का चरम (निर्णय) प्राप्त होता है। वैदिकसाहित्य का अंतिम भाग उपनिषद या वेदान्त साहित्य के रूप में विख्यात हुआ। इनमें यद्यपि कर्मकाण्ड का प्रत्यक्षतः विरोध नहीं किया गया, तथापि ज्ञानकाण्ड पर अधिक बल दिया गया है। इसके गद्य की भाषा ब्राह्मणग्रंथों के गद्य से मिलती है। बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, कौषीतकि उपनिषद् एवं तैत्तिरीयोपनिषद् की भाषा प्रायः गद्यमय है। इसी प्रकार केनोपनिषद् का कुछ भाग गद्य में लिखा गया है, तो कुछ पद्य में। मैत्रायणी उपनिषद और माण्डूक्योपनिषद् का भी अधिकांश भाग गद्य में है एवं प्रश्नोपनिषद् का भी एक अंश गद्य में है किन्तु इन उपनिषदों की भाषा लौकिक संस्कृत से मिलती है। अतः इन्हें अर्वाचीन माना गया है। उभयविध उपनिषदों में ब्राह्मण ग्रंथों से मेल खाने वाले तैत्तिरीय आदि उपनिषदों का गद्य सरल होता हुआ भी रूखा न होकर चित्ताकर्षक है। इनमें क्रिया (आख्यात) रूपों की अधिकता है। कहीं-कहीं आवृत्ति के द्वारा या पुनरुक्ति के द्वारा वाक्यों को आत्मसात् कराने का प्रयास हुआ है। इसकी भाषा में दीर्घ समासों का अभाव है। अर्वाचीन छान्दोग्योपनिषद् का गद्य भी लौकिक संस्कृत के व्याकरणिक नियमों से मुक्त एवं आर्ष प्रयोगों से परिपूर्ण है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नअन्यत् विजानाति तद् भूमा । अथ

यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं। यो वै भूमा तदमृतम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।"

प्राचीन उपनिषदों में तैत्तिरीयोपनिषद् का एक गद्यखण्ड दर्शनीय है- **"सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव"।**

1.4.1.5 वेदाङ्गसाहित्य का गद्य-

उपनिषदों के पश्चात् वेदाङ्ग साहित्य का विकास हुआ। इनमें वेदों के कर्मकाण्ड से प्रत्यक्ष सम्बन्धित 'कल्प' नामक वेदान्त है। इनका विकास सूत्रशैली के गद्य में हुआ है। इनमें श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ये दो विभाग दृष्टिगत होते है। श्रौतसूत्रों का सम्बन्ध यज्ञों से है; तो गृह्यसूत्रों का सम्बन्ध गार्हपत्य अग्नि से होने वाले कृत्यों एवं नियमों से है। गद्य के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया इनसे होती हुई कालान्तर में और संक्षिप्त हो गयी जिसका पूर्ण विकास पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में मिलता है। इस संक्षेप-शैली में क्रियापदों का प्रायः अभाव होता है। जो आगे चलकर समासबहुला शैली के रूप में विकसित हुआ। वैदिक कोश एवं निर्वचन को प्रस्तुत करने वाला यास्क का निरुक्त इसका उत्तम उदाहरण है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है। **"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः।"**

वेदों के व्याकरण को प्रस्तुत करने वाला प्रातिशाख्य भी इसी गद्यशैली में लिखा गया है।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृत गद्य का प्रथम दिग्दर्शन हमें वेदों में मिलता है; जो क्रमशः विकास को प्राप्त करते हुए ब्राह्मणग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों से होता हुआ कल्पसूत्रों एवं निरुक्त में विकास को प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता रहा।

1.4.2 दार्शनिक गद्य-

उपनिषदों से अनुस्यूत् एवं अनुप्राणित भारतीय दर्शन के प्रमुख सम्प्रदायों की विचारधाराएँ गद्यसाहित्य के माध्यम से ही पल्लवित हुई हैं। दार्शनिक गद्य के यथार्थवादी होने से इसमें साहित्यिक कौशल भले ही न हो, किन्तु भाव प्रकाशन और रचनाकौशल की दृष्टि से यह बेजोड़ है। उपनिषदों में प्रयुक्त गद्य के अनेक उद्धरण

वेदान्त आदि दर्शनों के भाष्य में दृष्टिगत होते हैं इन्हीं को आधार बनाकर सूत्रग्रंथ एवं भाष्यग्रंथ विकसित हुए हैं। यह गद्य पारिभाषिक पदावली एवं तर्क से परिपूर्ण हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् का यह वाक्य उदाहरणभूत है-

"नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि तान्मामवतु। तद्वक्तारमवतु, अवतु माम् अवतु वक्तारम् (तैत्तिरीयोपनिषद्-1)

आशय यह है कि वेदों एवं उपनिषदों को आधार बनाकर ही कालान्तर में दार्शनिक गद्य उपवृंहित एवं निर्मित हुआ।

1.4.3 व्याख्यात्मक गद्य-

कालक्रमानुसार संस्कृत में व्याख्यात्मक गद्य की परम्परा विकसित हुई। इनमें आचार्य शबरस्वामी का शाबरभाष्य या मीमांसाभाष्य, आचार्य शङ्कर का शारीरीक भाष्य, पतञ्जलि का व्याकरण महाभाष्य प्रशस्तपादाचार्य का प्रशस्तपाद भाष्य आदि उल्लेखनीय हैं। इन भाष्यों को आधार बनाकर कालान्तर में समृद्ध गद्य साहित्य का निर्माण हुआ। इन शारीरक भाष्य की भाषा प्राञ्जल एवं प्रौढ़ सरणि का परिचय देती है। इसकी एक झलक ब्रह्मसूत्र के इस प्रारम्भिक भाष्य में देखी जा सकती है- **"युष्मदस्मद्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमः प्रकाशवद् विरुद्ध स्वभावयोरितरेतरभावानुपपत्तौमिथ्याज्ञाननिमित्तः सत्यनृतेमिथुनीकृत्य "अहमिदं" "ममेदम्" इति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः। ..... कोऽयमध्यासो नायेति। उच्यते- "स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः" (ब्रह्म. अध्यास भाष्य)**

इस दिशा में जयन्तभट्ट की न्यायमञ्जरी का गद्य भी उल्लेखनीय है। आशय यह है कि वेदों के क्रम से विकसित होता हुआ संस्कृत गद्य कालान्तर में प्रौढ़ता को प्राप्त हुआ और विद्वानों का कण्ठहार बन गया। इस गद्य को अनलङ्कृत श्रेणी का माना गया है।

1.4.4 पौराणिक गद्य-

यद्यपि वेदों से उपवृंहित पुराणग्रंथ पद्यात्मक है। तथापि श्रीमद्भागवत्पुराण, विष्णुपुराण आदि में यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग हुआ है। इन पुराणों के गद्य में भाषा का

स्वाभाविक प्रवाह मिलता है। इनमें कहीं कहीं आर्ष प्रयोग भी मिलते है। लौकिक साहित्य की भाँति ही इसके गद्य में भी ललितपदावली का प्रयोग हुआ है। इसका गद्य प्रासादिकता, प्रौढ़ता और आलङ्कारिकता से सम्पन्न है। जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है- **"सांसर्गिकोदोष नूनमेकस्यापि सर्वेषां सासंर्गिकाणां भवितुमर्हति"। (श्रीमद्भागवत 5/10/15)**

विष्णुपुराण के गद्य में साहित्यिक गद्य का सौन्दर्य दिखायी देता है। यद्यपि वहाँ विशेष गाढबन्धता का अभाव है, तथापि उसके काव्यसौन्दर्य में कमी नहीं आती। **"यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।" (विष्णुपु. 4.13.14)**

1.4.5 लोककथात्मक गद्य-

संस्कृत की लोककथाओं एवं नीतिकथाओं का अधिकांश भाग गद्यात्मक है। पद्य का प्रयोग यहाँ प्रकरणानुकूल है। स्वाभाविकता एवं मधुरता इस विधा के गद्यसाहित्य की प्रमुख विशेषता है। ये लोककल्याण के लिये व्यवहार एवं नीति की शिक्षा देते हैं। प्राचीन कथासाहित्य में वेताल पञ्चविंशति, हितोपदेश, पंचतंत्र, सिंहासन द्वात्रिंशिका आदि का नाम उल्लेखनीय है। हितोपदेश के एक उदाहरण से इसका सौन्दर्य एवं स्वाभाविकता देखी जा सकती है- **"अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मली तरुः। तत्र नानादिग्दिशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति।..... पाशहस्तं व्याधमपश्यत।" (हितोपदेश-मित्रलाभ)**

बौद्धयुग में भी गद्यसाहित्य के माध्यम से जनता तक उपदेशों को पहुँचाने के लिए पालिभाषा में कथासाहित्य की रचना हुई, जो संस्कृत से निर्गत बोल चाल की भाषा थी। इनमे पुनरुक्ति की प्रचुरता है। बौद्धसाहित्य का जातक कथाओं से सम्बन्धित गद्य यद्यपि स्वाभाविक एवं सरल है, तथापि वह कथा के वर्णन में समर्थ है। बौद्धसाहित्य में लिखा गया द्वितीय प्रकार का गद्य नितान्त प्रौढ है, यह गद्य शास्त्रीय ग्रंथों में देखने को मिलता है। इस श्रेणी के गद्य में 'मिलिन्दपञ्हो' का गद्य आता है। ईसा की द्वितीय शताब्दी में स्थितिकाल प्राप्त करने वाले आर्यशूर ने पालि के जातकों को संस्कृत भाषान्तर जातकमाला के रूप में प्रस्तुत किया। जिसका गद्य प्रसादगुण से युक्त होने के

साथ ही काव्यगुणो से भी अलङ्कृत है। इसे सुबोध शैली के गद्य का सुन्दर उदाहरण माना गया है।

1.4.6 साहित्यिक गद्य-

संस्कृत साहित्य में दो प्रकार के गद्यकाव्यों का विकास हुआ। 1. इनमें प्रथम प्रकार का गद्य अनलङ्कृत शैली का है 2. द्वितीय अलङ्कृत शैली का है। इसे विवेचनात्मक गद्य कहा जा सकता है। प्रथम श्रेणी के गद्य में व्याकरण, दर्शन, वैद्यक, नीतिशास्त्र इत्यादि का गद्य आता है। इसे शास्त्रीय गद्य भी कहा जा सकता है। इसी श्रेणी में निरुक्त, ज्योतिष् पुराण आदि में प्रयुक्त गद्य की भी गणना होती है।

2. अलङ्कृत शैली के गद्य में नाटक, चम्पूकाव्य एवं गद्यकाव्य के रूप में लिखे गये साहित्य, नाट्यशास्त्र एवं नाट्यसाहित्य, चम्पूकाव्य एवं गद्यकाव्य आते हैं, इन्हें अलङ्कृत शैली का गद्य कहा गया है। प्रथम प्रकार के गद्य को शास्त्रीय गद्यसाहित्य एवं द्वितीय प्रकार के गद्यसाहित्य को काव्यात्मक शैली की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

शास्त्रीय गद्यसाहित्य का प्राचीनतम रूप हमें पतञ्जलि के महाभाष्य में दिखायी देता है। यह ग्रन्थ व्याकरण महाभाष्य के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस महनीय ग्रन्थ में व्याकरण जैसे नीरस विषय को उक्ति-प्रत्युक्ति की विधा द्वारा सहजता दी गयी है। भाष्यकार की शैली से महाभाष्य शुष्कता और जटिलता को छोड़कर आख्यान जैसा प्रतीत होने लगता है। जिससे यह प्रतीत होता है कि गुरु और शिष्य आमने-सामने बैठकर प्रश्न और उत्तर के माध्यम से शास्त्र की गुत्थियों को सुलझा रहे हैं। यह गद्य आडम्बर युक्त न होकर कथोपकथन जैसा प्रतीत होता है। महाभाष्य के प्राञ्जल गद्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"निमित्तानि हि निमित्तकार्यार्थानि भवन्ति। किं पुनर्निमित्तं को वा निमित्त? प्रकृत्युपपदोपाधयो निमित्तं, प्रत्ययो निमित्ती। अन्यत्रापि चैष 'न्यायो दृष्टो नावश्यमिहैव। क्वान्यत्र? लोके। तद्यथा बहुष्वासीनेषु कश्चित्कंचित् पृच्छति- कतरो देवदत्तः कतमो यज्ञदत्त इति? स तस्मायचष्टे- 'योऽश्वे यः पीठः इत्युक्ते निमित्तस्य निमित्तकार्यार्थत्वादध्यवस्यति- 'अयं देवदत्तोऽयं यज्ञदत्तः' इति।" (महाभाष्य 3/1/1/1)

आशय यह है कि पतञ्जलि के इस भाष्य में प्राञ्जल गद्य का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

इसी प्रकार भारतीय षड्दर्शनों के सूत्र ग्रंथों पर लिखे गये अन्य भाष्य भी हमें प्राञ्जल गद्य का दिग्दर्शन कराते है। इस गद्यसाहित्य में दार्शनिक गद्य की गम्भीरता होते हुए भी स्वाभाविकता झलकती है। इनमें आचार्य शबरस्वामी का मीमांसाभाष्य, न्यायसूत्र पर लिखा गया वात्स्यायनभाष्य योगसूत्रों पर लिखा गया व्यासभाष्य, वैशेषिकसूत्रों पर लिखा गया प्रशस्तपाद भाष्य एवं वेदान्तसूत्रों पर लिखा गया शङ्कराचार्य का भाष्य इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इन सभी शास्त्रीय भाष्यों में शाङ्कर भाष्य अद्वितीय है। इस भाष्य के वाक्यों की सारगर्भिता, प्राञ्जलता और प्रौढ़ता अद्वितीय है। वाचस्पति मिश्र जैसे प्रकाण्ड विद्वान् ने इस भाष्य को वीणा जैसी मधुर झङ्कार से झंङ्कृत 'प्रसन्नगम्भीर' गद्य की संज्ञा से विभूषित किया है। अपनी विवेचनापूर्ण तर्क प्रवण शैली से उन्होंने गद्यात्मक संस्कृत साहित्य के सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये है। **"नहि प्रदीपः प्रदीपान्तरनुभाति" या "नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणे जानुभ्यां रंहितुमर्हति'** जैसे वाक्यों की सुषमा पर अनेक ग्रंथ निछावर हो जाते हैं। इसी प्रकार शारीरकसूत्र के **"युष्मदमदप्रत्यययोर्गोचर."** जैसे उपोद्घात भाष्य में प्रस्तुत गद्य भी बेजोड हैं।

अनलङ्कृतशैली के गद्यों में जयन्तभट्ट की न्यायमञ्जरी का स्थान भी विशेष है। इनकी रोचकतापूर्ण शैली ने न्याय जैसे कठिन दर्शन को भी हृदयग्राही बना दिया है। इसका एक उदाहरण इन पंक्तियों में दर्शनीय है- **"नहि दहनपिण्डाद् भेदेनापि भान्तः स्फुलिङ्गा अग्निस्वरूपा भवन्ति तत् किं ब्रह्मण एवाविद्या? न च ब्रह्मणोऽविद्या।"**

वस्तुतः प्रारम्भिक काल में जो गद्य सरल एवं स्पष्ट रूप में था; वह कवियों के पाण्डित्यप्रदर्शन के कारण आगे चलकर क्लिष्टता की ओर उन्मुख हुआ। जिसकी चरम परिणित आचार्य गङ्गेशोपाध्याय के द्वारा लिखित नव्यन्याय के ग्रंथों में दिखायी पड़ी।

समीक्षा- वस्तुतः वैदिक गद्य और लौकिक गद्य को मिलाने की कड़ी के रूप में पौराणिक गद्य की भूमिका रही है। पौराणिक गद्य में यत्र-तत्र प्रसादगुणमयी अलङ्कृत शैली का प्रयोग हुआ है। श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण जैसे ग्रन्थों में इसके उदाहरण स्पष्टतया देखे जा सकते हैं।

कालान्तर में भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिये सरल भाषा में पालि रूप के गद्य का प्रयोग किया। जिसमें जातककथाओं के माध्यम से कथा का वर्णनकर शिक्षा दी गई। इसमें पुनरुक्ति की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। बौद्धसाहित्य में जातकग्रंथों का गद्य जहाँ सरल और सुबोध शैली में है, वहीं शास्त्रीय ग्रंथों का गद्य अत्यन्त प्रौढ़ शैली में लिखा गया है। इनमें 'मिलिन्दपञ्हो' का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार द्वितीय शताब्दी में आर्यशूर द्वारा संस्कृत भाषान्तर जातकमाला के नाम से पालिजातकों का संग्रह प्रस्तुत किया है। इसकी शैली सुबोध होने के साथ ही अलङ्कृत भी है।

साहित्यिक गद्य में शास्त्रीय कोटि के संस्कृत गद्य में एक विशेष शैली का प्रयोग हुआ है, जो वस्तुतः गद्य और पद्य का मिश्रण कहा जा सकता है। इसका गद्य सूत्रशैली प्रभावित होने के कारण इसमें पारिभाषिक और सामासिक पदों का बाहुल्य है। इन ग्रन्थों में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, काव्यशास्त्रीय एवं आलङ्कारिक ग्रन्थ तथा चरकसंहिता आदि वैद्यक ग्रन्थों का नाम उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थों में विषयविवेचन गद्य में है, जबकि दृष्टान्त या सारांश पद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

1.4.6.2 आलङ्कारिक शैली का गद्यसाहित्य-

इस शैली के गद्य का प्रयोग गद्यकाव्यों, चम्पूकाव्यों एवं नाट्यग्रन्थों में हुआ है। संस्कृत साहित्य में इस गद्यसाहित्य के विकास की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इसके रूपों का दर्शन हमें राजप्रशस्तियों से लेकर साहित्यिक ग्रंथों में मिलता है। वस्तुतः इस शैली का विकास शताब्दियों के प्रयास से हुआ। यह संभव है कि पाणिनि से पूर्व भी इस प्रकार के ग्रंथो की रचना हुई रही हो, किन्तु वे सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इसे संक्षेप में इस प्रकार रेखाङ्कित किया जा सकता है-

(1) ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व आचार्य कात्यायन ने अपने वार्तिक में 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' और 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' में 'आख्यायिका' शब्द का उल्लेख किया है। जिससे यह ज्ञात होता है कि ईसा से 400 वर्ष पूर्व आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण से लोग भली भाँति परिचित थे। कात्यायन की गणना व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय के रूप में होती है। आशय यह है कि संस्कृत गद्य की विधा का उस काल में व्यापक प्रचार प्रसार था।

(2) द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व में महाभाष्यकार पतञ्जलि के द्वारा "अधिकृत्य कृते ग्रंथे", "आख्यायिकाभ्यो बहुलं लुग्ववक्तव्यः" तथा 'वासवदत्ता सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी' जैसे वाक्यों का प्रयोग किया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि उनसे पूर्व ही वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी आदि आख्यायिकायें प्रचलन में थी और प्रसिद्ध भी थीं। (महाभाष्य 4/3.87) वररुचि ने जहाँ 'चारुमती' की कथा का उल्लेख किया है, वहीं श्रीपालित ने 'तरंगवती' का उल्लेख किया है। ये राजा हाल के दरबारी कवि थे।

(3) भोज ने शृङ्गार प्रकाश में 'मनोवती' और 'शातकर्णीहरण' की चर्चा की है; तो दण्डी ने भी 'मनोवती' का उल्लेख किया है। कवि कर्पूर ने अपनी 'तिलकमञ्जरी' कृति में तरङ्गवती कथा की प्रशंसा की है। जिससे यह सिद्ध होता है कि ईसापूर्व प्रथम शताब्दी तक संस्कृत गद्यकाव्य पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका था। वस्तुतः ईसा की 29 वर्ष से 125 ई. पूर्व तक आन्ध्र के भृत्य राजाओं के काल में कवि पालित कृत तरङ्गवती और अज्ञातनामा कवि के द्वारा मनोवती और शातकर्णी हरण की रचना हो चुकी थी।

(4) महाकवि दण्डी ने भी 'मनोवती' का उल्लेख अपनी "अवन्तिसुन्दरी कथा" में किया है- "धवलप्रभया रागं स वितनोति मनोवति" इस कथन से यह सिद्ध होता है कि आचार्य दण्डी इस कथाग्रन्थ से भलीभाँति परिचित थे।

(5) कविजल्हण ने अपने ग्रन्थ में 'रामिलसौमिल' रचित 'शूद्रककथा' का उल्लेख किया है-

"तौ शूद्रककथाकारौ बन्द्यौ रामिलसौमिलौ।

काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्।।"

आशय यह है कि रामिल और सौमिल नामक दो बंधुकवियों ने मिलकर शूद्रककथा की रचना की थी। जिसने अर्ध नारीश्वर की भाँति ख्याति अर्जित की।

(6) महाकवि कल्हण ने अपनी सूक्तिमुक्तावली नामक कृति में शीलाभट्टारिका नामक गद्य कवियित्री का उल्लेख किया है। जिन्होंने पाञ्चालीरीति का प्रयोग अपनी रचना में किया, किन्तु अद्यतन उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। वे कहते हैं-

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।

शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि शीलाभट्टारिका एक उच्चकोटि की गद्यलेखक थी। महाकवि हरिषेण कृत प्रयागप्रशस्ति नामक स्तम्भलेख में भी (345 ई.) में इनकी रचनाओं की तुलना बाणभट्ट के गद्य से की गयी है।

(7) रुद्रदामन् का गिरिनार शिलालेख जो 950 ई. से 970 ई.) के मध्य निर्मित हुआ था, इसमें भी समासबहुला पदावली का प्रयोग हुआ है। ये "स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयादारालङ्कृत गद्य-पद्य" के लेखन में निपुण कहे गये हैं।

(8) ईसा की छठी शताब्दी में स्थिति काल को प्राप्त करने वाले आचार्य दण्डी ने "दशकुमारचरितम्" और "अवन्तिसुन्दरी कथा" की रचना की। ये दक्षिणात्य कहे गये है। ये विदर्भदेशीय भी कहे गये हैं। इनकी रचनाओं का पदलालित्य प्रसिद्ध है- "उपमा कालिदासस्य भारवेर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।" ये वैदर्भी शैली के गद्य रचनाकार थे। वस्तुतः इस युग से लेकर बाणभट्ट तक का काल संस्कृत गद्यकाव्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

(9) छठी शताब्दी में स्थितिकाल को प्राप्त आचार्य सुबन्धु (600 से 650) की भी गद्यकाव्य के क्षेत्र पर पर्याप्त ख्याति है। इन्होंने 'वासवदत्ता' की रचना की। यह गौड़ी रीति का गद्यकाव्य है। इनकी यह रचना शब्दाडम्बर से युक्त है। इसमें श्लेष, विरोधाभास, अतिशयोक्ति आदि अलङ्कारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। इनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता भावबाहुल्य और सजीव कल्पनाये हैं।

(10) सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध में स्थितिलब्ध महाकवि बाणभट्ट ने अपनी हर्षचरित नामक रचना में 'भट्टारहरिश्चन्द्र' नामक एक प्रौढ गद्यलेखक का उल्लेख किया है एवं उनके द्वारा विरचित प्राञ्जल गद्य की प्रशंसा भी की है। वे कहते हैं-

पद्यबन्धोज्ज्वलोहारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।

भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।।" (हर्षचरित)

महाकवि बाणभट्ट ने स्वयं भी 'हर्षचरित' और कादम्बरी जैसी प्रौढ़ अलङ्कृत गद्यरचनायें की। ये पाञ्चाली रीति के कवि थे। इनकी 'कादम्बरी' के विषय एक सूक्ति बहुप्रचलित हो गयी थी- "कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते" अर्थात् कादम्बरी के

रस के भिज्ञ जनों को भोजनादि की चिन्ता नहीं रहती। वस्तुतः उक्त कवियों की रचनाओं की गणना संस्कृत गद्यकाव्य की बृहत्त्रयी के रूप में होती है।

(11) दशमशताब्दी में महाकवि धनपाल के द्वारा विरचित "तिलकमञ्जरी" नाम गद्यरचना ने भी पर्याप्त यश अर्जित किया। इस सम्बन्ध में एक उक्ति प्रसिद्ध है-

"वचनं धनपालस्य चन्दनं मलयस्य च।

सरसं हृदिविन्यस्य कोऽधुना न निवृत्तः।।"

आशय यह है कि धनपाल की रचना का यश मलयचन्दन की भाँति विस्तारित हुआ।

(12) दशम शताब्दी में ही वादीभसिंह नामक कवि हुए जिन्होंने कादम्बरी का अनुकरण करते हुए "गद्यचिन्तामणि" की रचना की।

(13) ईसा की ग्यारहवी शताब्दी में जन्मे आचार्य 'सोढ्ढल ने' 'उदयसुन्दरी' नामक रचना से गद्यसाहित्य को समृद्ध किया। इसी प्रकार ईसा की 15वीं शताब्दी में वामनभट्ट बाण ने "वेमभूपालचरितम्" की रचना करके गद्यकाव्य के प्रवाह को आगे बढ़ाया।

(14) ईसा की 18वीं शताब्दी शताब्दी में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डे ने 'मंदारमंजरी' नामक प्रसिद्ध गद्यकाव्य की रचना की, जो पूर्ण न होने पर भी पर्याप्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुई। इस कृति में पुष्पपुर के राजा राजशेखर के पुत्र चित्रभानु और मन्दारमंजरी की प्रेम कथा और उनके परिणय का वर्णन है।

(15) 19वीं शती में स्थितिलब्ध पं अम्बिकादत्त व्यास ने "शिवराजविजय" नामक ऐतिहासिक गद्यकाव्य की रचना करके विद्वत्समाज को चमत्कृत कर दिया। इसमें संवादों की सजीवता के साथ ही व्यंग्य और हास्य की झलक भी मिलती है। अपनी विशेषताओं के कारण व्यास जी आधुनिक युग के बाणभट्ट के रूप में प्रसिद्ध हुए। ये मुक्तकों की रचना में सिद्धहस्त थे। इन्हें काशी की विद्वन्मण्डली से 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। इन्होंने 50 के लगभग रचनायें की थी।

(16) संस्कृत के अलङ्कृत शैली के गद्यकारों में पण्डिता क्षमाराव का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने 'कथामुक्तावली' की रचना करके एक नवीनशैली को जन्म

दिया। यह पाँच लघुकथाओं का संग्रह है। इसी प्रकार संस्कृत गद्यकाव्यों की शृङ्खला में पं. रामशरण त्रिपाठी की "कौमुदीक था कल्लोलिनी" भी गद्यसाहित्य की अप्रतिम रचना है। इसी क्रम में प्रमोदभारती के कथा ग्रन्थ भी उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में गद्य के विकास की परम्परा एक दिन में या सीमित अवधि में विकसित नही हुई, अपितु क्रमिक विकास को प्राप्त हुई। प्रारम्भ में गद्यकाव्य सहज होते थे, जो आगे चलकर अलङ्कृत शैली में आबद्ध हुए और विकास के सोपान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके साथ ही यह सिद्ध किया कि गद्यकाव्य समाज को एक नयी दिशा देने में सक्षम है।

महाकवि बाणभट्ट-

संस्कृत गद्यसाहित्य में सबसे लोकप्रिय बाणभट्ट ने अपनी काव्यप्रतिभा से सबको चमत्कृत एवं प्रभावित किया है। इनके गद्य में संस्कृत गद्यकाव्य का चूडान्त उत्कर्ष देखा जा सकता है। इनके गद्यकाव्यों में पद्य से अधिक सरसता एवं रोचकता तथा लालित्य विद्यमान हैं। इनकी रचनाओं में प्रसाद और ओजगुण का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। वाग्देवी के वरदपुत्र बाणभट्ट का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। इस कारण उन्हें गद्यकाव्य का सम्राट माना गया है। बाणभट्ट के जन्म का काल और जीवन परिचय हमें प्रामाणिक रूप में प्राप्त होता है। बाणभट्ट ने अपने प्रथम गद्यकाव्य हर्षचरित में तथा कादम्बरी की भूमिका के श्लोको में अपने वंश का परिचय दिया है। जिसके अनुसार उनके पूर्वज सोननदी पर स्थित प्रीतिकूट नगर में रहते थे। यह बिहार के आरा जिले में स्थित है। बाण का जन्म वात्स्यायन वंश में हुआ था। इनके पूर्वज कुबेर भी असाधारण विद्वान् थे। इन्ही की पञ्चम पीढ़ी में बाणभट्ट का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम राजदेवी और पिता का नाम चित्रभानु था। भूषणभट्ट या पुलिन्द इनके पुत्र थे। ये राजा हर्षवर्धन के राजाश्रित कवि भी रहे थे। ये शिव के उपासक थे; ऐसा इनकी रचनाओं से सूचित होता है। इनका जन्म ईसा की सातवी शताब्दी (606 से 648 ई.) में हुआ था। इस समय की पुष्टि अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग द्विविध साक्ष्यों से होती है।

बाणभट्ट से परवर्ती गद्यकाव्य-

बाणभट्ट ने हर्षचरित और कादम्बरी कथा नामक दो प्रसिद्ध गद्यकाव्यों की रचना

की। इनमें कादम्बरी कथाशैली में लिखा गया है; जबकि हर्षचरित आख्यायिका नामक गद्यविधा में निर्मित है। इसके अतिरिक्त चण्डीशतक, पार्वतीपरिणय, मुकुटताडितक और पद्यकादम्बरी को भी इनकी रचना माना गया है। बाणभट्ट की कृतियों के विषय में विस्तार से वर्णन अगली इकाई में किया जायेगा।

गद्यकाव्य के विकास के क्रम में धनपाल कृत तिलकमञ्जरी (1000 ई.) का नाम उल्लेखनीय है। ये धारा नरेश मुंज और भोजराज के आश्रित रहे थे। इनका समय 952 से 1033 के मध्य माना गया है। मध्यप्रदेश के सांकोश्य नगर में जन्मे देवर्षि इनके पितामह और सर्वदेव इनके पिता थे जो सभी शास्त्रों में प्रवीण थे। ये सांकाश्य नगर से आकर उज्जयिनी में निवास करने लगे थे। इनकी 9 रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें संस्कृत नाममाला, पाइ अललच्छी नाममाला भाषाशास्त्र के ग्रंथ है। प्राकृत भाषा में लिखी गयी ऋषभपञ्चाशिका और श्रीवीस्तुति तथा वीरस्तुति स्तोत्रग्रंथ हैं। चतुर्विंशति जिनस्तुति टीका जैन शोभनमुनि के स्तोत्र की टीका है। श्रीमहावीर उत्साह (अपभ्रंश में) तथा श्रावकविधि- जैन धर्म से सम्बद्ध ग्रंथ है। इनमें 'तिलकमंजरी' कवि धनपाल की कीर्ति का अक्षयस्तम्भ है। इसकी रचना उन्होंने राजा मुंज के भतीजे भोजराज के मनोविनोद के लिये की है। इसका नायक अयोध्या या सम्राट मेघवाहन का पुत्र हरिवाहन और नायिका चित्रसेन की पुत्री तिलकमञ्जरी है। इसका कथानक जैनागमों पर आधारित है। इसकी रीति वैदर्भी मिश्रित पाञ्चाली है। यह ग्रंथ अनेक परवर्ती काव्यों का स्रोत बना।

वादीभसिंह कृत गद्यचिंतामणि-

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के साधु वादीभ सिंह पुष्पसेन मुनि के शिष्य थे इनका वास्तविक नाम ओऽदेव था। वादीभ सिंह नाम इनकी शास्त्रार्थ पटुता के कारण इन्हें प्राप्त हुआ। इनका काल 11वीं शताब्दी माना गया है। ये दक्षिण के तमिल राज्य के निवासी थे। इन्होंने गद्य चिंतामणि के अतिरिक्त स्याद्वादसिद्धि, नवपदार्थनिश्चय जैसे दार्शनिक ग्रंथ भी लिखे थे। गद्य चिंतामणि आख्यायिका शैली का ग्रंथ है, जो कादम्बरी का अनुकरण करता है। इसकी कथा गुणभद्रकृत उत्तरपुराण पर आधारित है। ग्यारह लंभको से विभक्त इसके नायक जीवन्धर हैं।

वामनभट्टबाण-

पारवर्ती गद्यकारों में 15वीं शताब्दी के रचनाकार वामनभट्ट बाण का 'वेमभूपालचरित' उल्लेखनीय है। इनकी अन्य रचनाएँ नलाभ्युदयकाव्य, रघुनाथचरित महाकाव्य, पार्वतीपरिणय नाटक, शब्दचंद्रिका और शब्दरत्नाकर है। इन्होंने अपने आश्रयदाता वेमभूपाल के जीवनवृत्त को आधार बना यह आख्यायिका लिखी है। यह हर्षचरित से प्रभावित ग्रंथ है।

सकलविद्या चक्रवर्ती-

गद्यकाव्य की परम्परा में 'गद्यकर्णामृत' के प्रणेता के रूप में इनकी ख्याति है। होयसलराजा सोमेश्वर (1556 ई.) के आश्रम में रहते हुए इन्होंने राजा नरसिंह द्वितीय के पांड्य, मगध तथा पल्लवों से 90 दिन तक चलने वाले युद्ध का वर्णन किया है। इन्होंने अपनी कथा में पौराणिक आख्यानों का मिश्रण किया है।

अनन्तशर्मा- गद्यकारों की इस शृङ्खला में 1650 ई. में स्थित अनन्तशर्मा ने मुद्राराक्षस की रचना भी उल्लेखनीय है।

आधुनिक गद्यकार-

अठारहवी से 20वी शताब्दी में भी अनेक रचनाकार हुए, जिन्होंने गद्यकाव्य की परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनमें राजा कृष्णराज (1795 ई.) के आश्रय में रहकर अहोविल ने 'अभिनवकादम्बरी' लिखी। इन्होंने अपने आश्रयदाता के वर्णन में बाणभट्ट की शैली का अनुकरण किया है। इसी परम्परा में पण्डितराज जगन्नाथकृत 'आसफखानविलास' नामक आख्यायिका ग्रन्थ है, किन्तु यह अपूर्ण है। इसमें अलङ्कृत गद्यशैली में नवाब आसफखान के गुणों का वर्णन है। विक्रम संवत् 1707 (1650) में रंगनाथ दीक्षित ने 'गुणमंदार मंजरी' नामक कथाग्रंथ लिखा, जो अद्भुत घटनाओं और रहस्य तथा रोमाञ्च से परिपूर्ण है। 18वीं शताब्दी में स्थित विश्वेश्वर पाण्डे ने 'मंदारमंजरी' की रचना की। यह कादम्बरी की भाँति पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त है। इसमें पुष्पपुर के राजा राजशेखर और रानी मलयवती के पुत्र चित्रभानु तथा विद्याधर चंद्रकेतु और रानी चंद्रलेखा की पुत्री मंदारमंजरी की कथा वर्णित है। इस ग्रंथ पर बाणभट्ट की शैली और कथावस्तु-विन्यास का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

इसी विकास क्रम में प्रबन्धमञ्जरी के रचयिता हृषीकेश भट्टाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। इनका काल 1850 से 1913 ई. के मध्य का है। बाणभट्ट के अनुकरण में लिखे गये ग्रंथों में श्रीशैलदीक्षित तिरुमलाचार्य का 'श्रीकृष्णाभ्युदय' है। दो भागों में विभक्त इस ग्रंथ में उन्होंने भक्तिभाव पूर्ण रागात्मक अभिव्यक्ति दी है। इनका काल 1809 ई. 1887 ई. के मध्य है।

इस विकास क्रम में 'शिवराजविजय' के प्रणेता पं० अम्बिकादत्त व्यास जी का उल्लेखनीय स्थान है। इनके द्वारा लिखा गया यह ऐतिहासिक गद्यकाव्य उपन्यासविधा के अधिक समीप है। ये हिन्दी के विख्यात कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। इनका काल 1858 से 1900 के मध्य है। इन्होंने हिन्दी-संस्कृत दोनों भाषाओं में लगभग 72 ग्रन्थों की रचना की थी। इसमें शिवराजविजय की रचना 1898 में हुई थी। ये बाणभट्ट की गद्यशैली से प्रभावित थे। इनका शिवराजविजय तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निःश्वास हैं। इसके नायक शिवाजी और प्रतिनायक औरंगजेब है। ऐतिहासिक घटनाओं से युक्त इस गद्यकाव्य में राष्ट्रीयता का भाव आदि से अंत तक भरा हुआ है।

गद्यकाव्य के इस विकासक्रम में 'कथामुक्तावली' की रचयिता पण्डिता क्षमाराव का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका काल 1890 से 1854 ई. के मध्य है।

इस परम्परा के अन्य गद्यकारों में 'शकुन्तलाचरितम् के रचयिता वरदाचार्य (20वीं शताब्दी), कुमुदिनीचन्द्र के रचयिता मेधाव्रत, चन्द्रमौलि की प्रणेता टी. राजम्मा, 'विद्वत्चरितपञ्चकम्' के प्रणेता नारायण शास्त्री ख्रिस्ते, रघुवंशविमर्श के प्रणेता श्रीकृष्णमाचार्यम् तथा 'सेतुयात्रावर्णनम्' के रचयिता टी.के. गणपतिशास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है। ये सभी 20वीं शती के कवि है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत गद्यकाव्य के विकास परम्परा वैदिक गद्य (यजुर्वेद) से प्रारम्भ होकर सूत्रयुग, पुराणयुग से होती हुई लौकिक गद्य के रूप में प्रवाहित सुबन्धु, दण्डी और बाणभट्ट के काल में चरमोत्कर्ष को पहुँची। इसके पश्चात अनेक परवर्ती गद्यकारों ने इस विकास क्रम में न केवल अभूतपूर्व योगदान दिया अपितु तत्कालीन समाज एवं राजनैतिक स्थितियों को चित्रित करते हुए इस विकास परम्परा को समृद्ध एवं परिपूर्ण किया।

बोध प्रश्न-

1. गद्यकाव्य के प्रारम्भिक रूप के दर्शन संस्कृत साहित्य में कहाँ होता है।
2. गद्यसाहित्य के प्रसिद्ध रचनाकारों का नाम एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
3. अलंकृत शैली के गद्यकाव्यों का नामोल्लेख करिये?
4. हरिषेणकृत प्रयागप्रशस्ति में किस राजा की स्तुति है?
5. आचार्य सुबन्धु किस शैली के गद्यकार है?
6. वादीभ सिंह ने किस गद्यकाव्य की रचना की थी?
7. तिलकमञ्जरी किस कवि की रचना है?
8. वामनभट्ट बाण की रचना का क्या नाम है?
9. अभिनव कादम्बरी की रचना किसने की है?
10. आचार्य विश्वेश्वर पाण्डे ने किस गद्यकाव्य की रचना की है?
11. शिवराजविजय के प्रणेता कौन हैं?

-----o----

इकाई – 2

महाकवि बाणभट्ट का व्यक्तित्व और कृतित्व

2.1- प्रस्तावना

2.2- उद्देश्य

2.3- महाकवि बाणभट्ट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.4- बोध प्रश्न

2.1- प्रस्तावना

इस इकाई में महाकवि बाणभट्ट के व्यक्तित्व सम्बन्धी परिचय के अनन्तर उनकी कृतियों के विषय में बताया जायेगा। बाणभट्ट का जन्म एवं स्थिति कहाँ और किस कालखण्ड में हुई। उन्होंने किन-किन ग्रन्थों की रचना की- यह अध्ययन प्रस्तावित है। इससे विद्यार्थियों को कवि परिचय के साथ ही उनकी कृतियों से परिचय हो जायेगा, जो विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि करेगा।

उद्देश्य-

1. इस इकाई के अध्ययन से छात्र बाणभट्ट के विषय में विस्तार से जान सकेगें।

2. इसके अध्ययन से उनके सांस्कृतिक इतिहास बोध में वृद्धि होगी।

3. महाकवि बाणभट्ट ने कौन-कौन सी रचनाएँ की थी? उनका गद्यकाव्य कौन-कौन से है? गद्यकाव्यों के अतिरिक्त उन्होंने कौन सी रचना की थी? इसका बोध भी इस इकाई के अध्ययन से छात्रों को होगा।

2.3 महाकवि बाणभट्ट का व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व-

संस्कृत साहित्य के गद्याकाश में बाणभट्ट की कृतियाँ चरमोत्कर्ष पर है। **'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्'** यह उक्ति बाणभट्ट के गद्य में पूर्णतः चरितार्थ

होती है। गद्यकाव्य की दोनो विधाओं में रचना करके बाणभट्ट ने अपने पाण्डित्य से साहित्यजगत् को चमत्कृत किया है। बाणभट्ट की प्रथम कृति 'हर्षचरित' आख्यायिका का उत्तम उदाहरण है, तो कादम्बरी कथाविधा का श्रेष्ठ उदाहरण है। इनका जन्म वात्सयायन गोत्रीय चित्रभानु के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम राजदेवी था। बाल्यावस्था में ही माता के स्वर्गवासी हो जाने पर इनका पालन-पोषण पिता नें किया।[1]

2.3.1 स्थितिकाल-

संस्कृत के अन्य कवियों की अपेक्षा बाणभट्ट के स्थिति काल के अधिक साक्ष्य विद्यमान है। इस सम्बन्ध में बाह्य और अन्तः दोनों प्रमाणों से बाणभट्ट के स्थिति काल की जानकारी मिलती है। बाणभट्ट ने स्वयं ही अपने और अपने वंश के विषय में जानकारी दी है। हर्षचरित के प्रथम तीन उच्छवासों से बाणभट्ट की आत्मकथा का परिचय मिलता है। उन्होंने अपने वंश का परिचय दिया है। जिसके अनुसार बाण के पूर्वज शोणनदी के तट पर बसे प्रीतिकूट नगर में रहते थे, जो सम्भवतः वर्तमान में बिहार प्रान्त के शाहाबाद (आरा) में स्थित है। इनका वंश प्राचीन समय से ही पाण्डित्य के लिये प्रसिद्ध था। बाण के वंश के प्रवर्तक वत्स दधीचि थे, जो सारस्वत के चचेरे भाई थे, इन्ही के नाम पर इनका कुलगोत्र वात्स्यायन हुआ। सारस्वत के चचेरे भाई कुबेर इसी वंश में हुए थे। कुबेर संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके घर पर अनेक वेदपाठी छात्र निवास करते थे। कुबेर के चार पुत्र अच्युत, हर, ईशान और पाशुपत हुए थे। पाशुपत के पुत्र अर्थपति हुए। अर्थपति के भृगु आदि 11 पुत्र हुए जिनमें आठवें पुत्र चित्रभानु के[2] यहाँ बाणभट्ट का जन्म हुआ। स्वयं बाणभट्ट के भूषण और मयूरभट्ट नामक दो पुत्र हुए। कहा जाता है कि पिता की मृत्यु के बाद मयूरभट्ट ने ही पिताजी का आज्ञापालन करते हुए कादम्बरी को पूर्ण किया। डॉ० बूलर उनका नाम् 'भूषण बाण' मानते है[3]; जबकि कुछ लोग भूषणभट्ट, किन्तु कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में उनका नाम पुलिन या पुलिन्द भट्ट मिलता है।[4]

---

1 "स बाल एवं विधेर्बलवतो वशादुतसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जामस्नेहस्तु पितैवास्य मातृतामकरोत्। (हर्ष. 1.19)

2 "अलभत् च चित्रभानु स्तेषां मध्ये राजदेव्याभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्।" (हर्ष. 1.19)

3 द्र० पीटर्सन्स इन्ट्रोडक्शन टू कादम्बरी, पृ.- 4

4 डॉ. एस. आर. भण्डारकर- रिपोर्ट ऑन च सर्च फॉर संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स 1904-5

बाणभट्ट के उपनयन के पश्चात् इनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। इस समय भी बाणभट्ट मात्र 14 वर्ष के थे। सुयोग्य अभिभावक के न होने से बाणभट्ट की युवावस्था अस्त-व्यस्त हो गयी वे अपने मित्रो के साथ देशाटन को निकल पड़े। एक दिन राजा हर्षवर्धन के दरबार में चचेरे भाई कृष्ण के निमंत्रण पर इन्हें बुलाया गया। जहाँ किसी ने इनका परिचय देते हुए 'महानयं भुजङ्गः' कहकर इनका परिहास किया। जिसका उचितरीति से खण्डन करके इन्होंने राजा का ध्यान अपने पाण्डित्य की ओर आकृष्ट किया। और राजदरबार में उन्हें कुछ दिनों के बाद ही 'वश्यवाणी कविचक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया। 648 ई. सन् में जब राजा हर्षवर्धन की मृत्यु हुई; तो ये राज्य में अराजकता फैल जाने के कारण पुनः प्रीतिकूट लौट आये और वहीं रहकर साहित्य सृजन करने लगे। इससे उनके बन्धु बान्धव भी प्रसन्न हुए। एक दिन सूचिबाण नामक सूत ने हर्षवर्धन को केन्द्र में रखकर दो आर्या छंद सुनाये, जिससे उत्साहित उनके चचेरे भाई के आग्रह पर बाणभट्ट ने अपना 'हर्षचरितम्' सुनाया। वस्तुतः बाण के पूर्वजों के पास चिरसंचित धन होने से वे किशोरावस्था में स्वातन्त्र्य के पक्षधर होकर अपनी विचित्र मित्रमण्डली के साथ भ्रमण पर निकल गये थे। स्वच्छन्दशील जीवन के कारण ही वे महापुरुषों के उपहास के पात्र बन गये थे। शनैः-शनैः राजकुलों में आते जाते रहे और अंततः अपने वंश के अनुकूल आचरण का अवलम्बन किया। श्रीहर्षदेव के भाई कृष्णदेव की कृपा से महाराज हर्ष के निकट पहुँचे और अपनी विद्वता के कारण श्री हर्ष के स्नेह के पात्र हो गये। उनके राजकवि के रूप में प्रतिष्ठापित होकर बाणभट्ट ने अत्यधिक यश और गौरव प्राप्त किया।[5]

बाणभट्ट का स्थितिकाल अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सुनिश्चित एवं प्रामाणिक है। बाणभट्ट राजा हर्षवर्धन के दरबारी कवि थे। जिनका काल 608 से 648 के मध्य का है। इस सम्बन्ध में अनेक अन्तः और बाह्य साक्ष्य मिलते हैं। इसकी पुष्टि चीनी यात्री ह्वेनसॉग के यात्रा विवरणों के साथ ही अनेक ताम्रपत्रों और दानपत्रों से होती है। ह्वेनसॉग का यात्राकाल 629 से 645 ई. में माना गया है। अतः बाणभट्ट का काल ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध सुनिश्चित होता है।

इस काल की पुष्टि आचार्य रुय्यक के अलङ्कार सर्वस्व में कई बार बाणभट्ट के

---

[5] हर्षचरित- 1-19

हर्षचरित का उल्लेख होने से होती है, इनका काल 1150 ई. सन् है। इसी प्रकार 1050 ई. में स्थित आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर बाणभट्ट का नामोल्लेख किया है। नमिसाधु (1069) ने रूद्रट कृत काव्यालङ्कार की टीका में कादम्बरी और हर्षचरित को कथा और आख्यायिका के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के प्रणेता भोजराज ने (1025) एक स्थान पर बाण के पद्य की अपेक्षा उनके गद्य को श्रेष्ठ बताते हुए उनकी प्रशंसा की है। वे कहते हैं- 'यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्ध न तादृशः।' दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने (1000 ई.) अपने ग्रंथ में 'यथाहि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य' कहकर उनका उल्लेख किया है। एवं 850 ई. में स्थित आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में इनको दोनों गद्यरचनाओं का उल्लेख किया है। 8वीं शताब्दी के आचार्य वामन ने भी अपनी 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में कादम्बरी के शूद्रकवर्णन प्रसङ्ग के "अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" वाक्यांश का उल्लेख किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि बाणभट्ट इनसे पूर्ववर्ती थे। आशय यह है कि 8वीं से 12वीं शताब्दी तक के प्रमुख आचार्यो के द्वारा अपनी रचनाओं में बाणभट्ट की रचनाओं या उद्धरणों का उल्लेख करके यह प्रमाणित किया गया है कि बाणभट्ट उनसे पूर्व हुए थे। अतः बाणभट्ट का काल सातवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है।

उक्त बाह्यसाक्ष्यों के अतिरिक्त अनेक अन्तःसाक्ष्य भी इस तथ्य को प्रमाणित करते हं। स्वयं बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रारम्भिक श्लोकों में व्यास हैं, भट्टारहरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध, भास, कालिदास, बृहत्कथा, आढ्यराज आदि का उल्लेख किया है; ये सभी उनसे पूर्ववर्ती थे। हर्ष की सभा में उनकी प्रतिष्ठा शासनकाल के उत्तरार्द्ध में हुई होगी। हर्षचरित में सम्राट् हर्षवर्धन की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है कि महाराज हर्ष ने अपना समस्त धन ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं को दान दे दिया था। ऐसे एक अवसर पर चीनी यात्रा ह्वेनसांग भी था; जो 643 ई. की घटना है। वस्तुतः हर्षवर्धन से मिलने के समय बाणभट्ट युवावस्था में रहे होंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि बाण का समय सातवी शताब्दी था।

2.3.2 बाणभट्ट कृत गद्यसाहित्य का परिचय-

बाणभट्ट की सुविख्यात रचनाये (1) 'हर्षचरित' (2) 'कादम्बरी' कथा है। इनके अतिरिक्त (3) 'चण्डीशतक' और (4) 'मुकुटताडितक' (5) 'पार्वतीपरिणय' और (6)

'पद्यकादम्बरी' को भी बाणभट्ट की रचना माना गया है। इनमें 'चण्डीशतक' स्तोत्रकाव्य है जबकि 'मुकुटताडितक' रूपक है, किन्तु मुकुटताडितक सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इन रचनाओं के अतिरिक्त बाणभट्ट के मुक्तक अनेक सुभाषितग्रंथो में उपलब्ध होते हैं। संभवतः ये मुक्तक बाणभट्ट के द्वारा देशाटन के समय लिखे गये होंगे, क्योंकि इन मुक्तकों में निम्नवर्ग, मध्यवर्ग और ग्रामाञ्चल के जीवन का सरस चित्रण है। बाणभट्ट की कालजयी रचनाएँ 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' कथा है जिनके कथानक में कथानायक के वंशपरम्परा का वर्णन भी है। इस कथा में ऐतिहासिकता से अधिक अलौकिक और काल्पनिक वृत्तांत भरे हुए हैं।

2.3.1. हर्षचरितम्-

यह बाणभट्ट की प्रथम कृति मानी जाती है। इसमें स्ववंशवर्णन के साथ सम्राट हर्षवर्धन का इतिहास भी समाविष्ट है। इसके नायक स्थाणेश्वर नरेश सम्राट हर्षवर्धन है। यह आख्यायिका विधा का ग्रंथ है। इसका प्रारम्भ पौराणिक शैली में हुआ है। यह रचना अपूर्ण है। संभवतः सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् आहत होकर बाणभट्ट नें आगे नहीं लिखा। कतिपय अन्य विद्वानों का मत है कि हर्ष ने जब बौद्धों को समादृत करना प्रारम्भ किया तो बाणभट्ट को दुख और ग्लानि हुई, और इन्होंने आगे की कथा नहीं लिखी। एक अन्य मत के अनुसार पुलकेशिन् द्वितीय के द्वारा हर्ष की पराजय हो जाने पर उन्होंने आगे की कथा नहीं लिखी। यहाँ यह भी संभव है कि राज्यश्री तक ही वे राजदरबार या हर्ष के सम्पर्क में रहे, अतः हर्षचरित में वहीं तक की कथा हर्षचरित में वर्णित है। सम्भवतः बाण यह स्वयं भी जानते थे कि वे हर्ष के पूरे जीवन की घटना नहीं सुना पायेंगे; अतएव जब श्यामल नामक उनके चचेरे भाई ने हर्षचरित सुनना चाहा तो उन्होंने कहा कि हर्षचरित को पूर्णरूपेण सुनाने में सैकड़ों पुरुषों की आयु में भी कौन समर्थ होगा; किन्तु यदि उसके एक भाग को सुनने में तुम्हे कुतूहल है तो ठीक है-

"कः खलु पुरुषायुशतेनापि शक्नुयादविकलस्य चरितं वर्णयितुम् एकदेशे यदि कुतूहलं वः सज्जा वयम्।" (हर्षचरितम्)

हर्षचरित एक ऐतिहासिक गद्यकाव्य है। तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें प्रामाणिकता और यथार्थता की खोज करना व्यर्थ है। वस्तुतः उस काल में बाणभट्ट के समक्ष समकालीन राजाओं से सम्बन्धित घटनाएँ अधिक स्पष्ट नहीं थी। डॉ० कीथ का

मानना है कि राजगृह की स्थिति, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के तथा बौद्ध सम्प्रदायों के साथ उनके सम्बन्धों, मित्रो और ब्राह्मणवर्ग के व्यवसायों का उन्होंने स्पष्ट चित्रण किया है।

हर्षचरित की कथा आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। यह कथा आख्यायिका शैली में लिखा गया है। हर्ष के वृतान्त की कथा चतुर्थ उच्छ्वास से प्रारम्भ होती है। ग्रंथ का प्रारम्भ शिव की स्तुति से होता है। प्रारम्भ के 21 श्लोकों में बाणभट्ट ने व्यास भास आदि अपने पूर्ववर्ती कवियों की प्रशंसा की है। प्रारम्भ के तीन उच्छ्वासों में बाण के वंश का परिचय और बाणभट्ट की आत्मकथा वर्णित है। चतुर्थ उच्छ्वास में हर्ष के आदि वंशज पुष्पभूति का नामोल्लेख करते हुए प्रभाकरवर्धन का जीवन, हर्ष एवं उनके अग्रज राज्यवर्धन तथा उनकी बहन राज्यश्री का उल्लेख है। रानी यशोमती एक बार ऐसा स्वप्न देखती हैं कि दोनो राजकुमार तथा एक कुमारी सूर्यमण्डल से निकल कर उसके उदर में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ समय बाद राजकुमारों एवं राजकुमारी का उनके यहाँ जन्म होता है। इनमें राज्यश्री का विवाह मौखरीनरेश ग्रहवर्मा के साथ होता है। राज्यवर्धन हूणों पर विजय प्राप्त करने हेतु प्रस्थान करता है। राजकुमार हर्ष भी उसके साथ जाता है। कुछ समय बीतने पर उसे पिता के अस्वस्थ होने का समाचार मिलता है, तब वे राजधानी लौट आते हैं। पाँचवे उच्छ्वास में राजा के निधन के पश्चात् गहरे विषाद और करुणापूर्ण वातावरण में महारानी यशोमती के सती होने का समाचार मिलता है। छठे उच्छ्वास में राज्यवर्धन हूणों पर विजय प्राप्त करके लौटता है और माता-पिता के दिवंगत होने से दुखी होकर राज्य हर्ष को देना चाहता है। तभी समाचार मिलता है कि उसके बहन के पति ग्रहवर्मा का मालवराज ने बध कर दिया है। राज्यवर्धन मालवराज से युद्ध करता है और उस पर विजय प्राप्त करके लौटता है, किन्तु मार्ग में गौड़ देश के राजा द्वारा छल से मार देता है। सातवें उच्छ्वास में हर्ष विजय अभियान की तैयारी करता है। आठवे उच्छ्वास में उसे ज्ञात होता है कि उसकी बहन वन में सती होने की तैयारी कर रही है। उसी समय हर्ष वहाँ पहुँचकर उसे सती होने से बचा लेता है। इसके पश्चात् दिवाकर मिश्र के द्वारा राज्यश्री को दिये गये प्रबोधन और राज्यश्री के साथ वापसी के प्रसङ्ग का निरूपण किया गया है। इसके आगे हर्षचरित नही लिखा गया। संभवतः बाणभट्ट को यहीं तक कथा लिखना अभीष्ट था। अतः इस कृति को पूर्ण समझना चाहिए।

हर्षचरित की कथावस्तु की मुख्य विशेषता यह है कि बाणभट्ट ने इसमें राजा का चरित्र लिखने के साथ ही तत्कालीन समाज, जनजीवन, लोकसंस्कृति, आख्यान, लोकाचार एवं विश्वास की लड़ी पिरो कर प्रस्तुत की। न केवल नगर अपितु वनग्रामों एवं बीहड़ों में रहने वाले विंध्यप्रदेश के आदिवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, उनके द्वारा गायों का बाड़ा निर्माण करना, चावल की भूसी में आग लगाना, वनरक्षकों का लकड़ी काटने वालों से कुल्हाड़ी छीना जाना, बाघो को फँसाने के लिए बाड़ा बनाना आदि दृश्यों का सजीव चित्रण भारत के ऐतिह्य और वैविध्य को मूर्तरूप में प्रस्तुत कर देता है। हर्षचरित में बाण की भाषा-शैली, चरित्रचित्रण एवं वर्णनवैविध्य दर्शनीय है। पति के निधन के पश्चात् सती होने के लिये तत्पर यशोमती के मनोभावों का हृदयद्रावी करुणापूर्ण मार्मिक चित्रण अद्वितीय है। अतः हम कह सकते हैं कि बाणभट्ट भाव और भाषा के धनी हैं। विचारों की नवीनता, रसपरिपाक, अलङ्कार प्रयोग तथा कल्पनाशीलता में वे अनुपम हैं। सोढ्ढल ने हर्षचरित की प्रशंसा में कहा है- **"बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति।।"**

भाव, भाषा, प्रसादगुण को मनोहर छटा का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है; इसमें माता यशोवती हर्ष से कहती हैं-

"वत्स! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सहस्वयापीतं मे हृदयम्। कुलकलत्रास्मि चारित्रधना धर्मधवले कुले जाता। वीरजा, वीरजाया वीरजननी या मादृशी पराक्रमक्रीता कथमन्य था कुर्यात्।" (हर्षचरितम्, पंचम उच्छ्वास)

2.3.2 चण्डीशतक-

सौ छन्दों वाले इस ग्रन्थ में स्रग्धरा छंद का प्रयोग हुआ है। इसमें भगवती दुर्गा की स्तुति लगभग 100 छंदों में की गयी है। कहा जाता है कि मयूरभट्ट जो उनके साले थे, उनके ऊपर बाणभट्ट क्रुद्ध हो गये थे और उन्हें कोढ़ी होने का शाप दे दिया था। बदले में मयूरभट्ट ने भी इन्हों कोढ़ी होने का शाप दे दिया था। जिसके निवारण हेतु इन्होंने चण्डीशतक की रचना की। इनकी स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने इन्हे आरोग्य प्रदान किया था। मयूरभट्ट ने भी आरोग्य हेतु सूर्य की स्तुति के लिये 'सूर्यशतकम्' लिखा था।

2.3.3 पार्वती-परिणय-

कतिपय विद्वानों का मत है कि कुमारसम्भव के अनुकरण पर बाणभट्ट ने 'पार्वती-परिणय' नामक नाट्यग्रंथ की रचना की थी; किन्तु इसकी शैली को देखते हुए यह बाणभट्ट की रचना नहीं प्रतीत होती। डॉ. कीथ ने इसे परवर्ती कवि वामनभट्ट बाण की रचना कहा है। (संस्कृत साहित्य का इतिहास का अनुवाद- डॉ. मङ्गलदव शास्त्री, पृ०- 372)

2.3.4 मुकुटताडितक-

नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल[6] और गुणविनय गणि ने एक श्लोक उद्धृत करने के प्रसङ्ग में बताया है कि बाणभट्ट ने मुकुटताडितक नामक नाट्यग्रंथ की भी रचना की थी। वे कहते हैं-

"यथाह मुकुटताडितकनाटके बाणः।" तथापि सम्प्रति यह रचना न तो कहीं अन्यत्र उल्लिखित है और न ही उपलब्ध। संभवतः यह भी किसी अन्य परवर्ती कवि की रचना हो सकती है।

2.3.5. पद्यकादम्बरी-

कतिपय विद्वानों का मत है कि बाणभट्ट ने पद्यात्मक कादम्बरी[7] की भी रचना की थी। वस्तुतः आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रंथ **'औचित्यविचारचर्चा'[8]** में कादम्बरी की कथा से सम्बद्ध एक श्लोक बाणभट्ट के नाम से उद्धृत किया है किन्तु यह कृति भी सम्प्रति अनुपलब्ध होने से इसके लेखक के विषय में या ग्रंथ के विषय में कुछ कहना अनुचित है।

2.3.6. कादम्बरी-

कथाविधा में लिखा गया यह गद्य काव्य संस्कृत साहित्य की जाज्वल्यमान मणि जैसा है। इसे बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट रचना कहा जा सकता है। यह कथा दो भागों में लिखी गयी है। भाषा, भाव और रस की ऐसी अद्वितीय संघटना अन्यत्र देखने को नहीं

---

6 नलचम्पू की चण्डपाल कृत टीका, उच्छ्वास 6 पृ० 185

7 काव्यमाला, प्रथम गुच्छक।

8 औचित्यविचारचर्चा- पृ.- 121

मिलती। कादम्बरी की इसी महिमा के कारण विद्वानों में एक उक्ति प्रचलित हो गयी- **"कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोऽपि न रोचते।"** अर्थात् जिसने कादम्बरी का आस्वाद कर लिया है उसे भोजन भी नहीं अच्छा लगता वस्तुतः यह इसकी प्रसिद्धि का द्योतक कथन है। इस ग्रंथ का पूर्वार्द्ध बाणभट्ट की रचना ह। इसके प्रारम्भ में बीस श्लोक मङ्गलाचरण के रूप में उपनिबद्ध है, जिसमें सज्जनों की प्रशंसा की गयी है। मङ्गलाचरण के पश्चात् कथा की भूमिका कथामुखम् है। कहा जाता है कि बाणभट्ट नें कादम्बरीकथामुखम पर्यन्त कथा ही लिखी थी, शेषकथा अर्थात् उत्तरार्ध भाग को उनके पुत्र भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट ने पूर्ण किया था। यह तथ्य इस श्लोक से प्रमाणित होता है-

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धे, विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः। दुखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य, प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्।।"

आशय यह है कि पिता (बाणभट्ट) के दिवंगत होने पर उनके आदेशानुसार जिससे पृथिवी पर कथाग्रंथ विच्छिन्न न हो जायँ, उनके इस मंतव्य से और उनके समाप्त न करने के दुख को देख कर ही मैने यह प्रयास किया, न कि कवित्व के अभिमान के कारण।

कहा जाता है कि कादम्बरी के उत्तरार्द्ध के पूर्ण न कर पाने से बाणभट्ट को बहुत चिन्ता थी। अतएव जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और एक अनुवाद करने को कहा- **'**यह सूखा वृक्ष मेरे सामने विद्यमान है।**'** उनके ज्योतिषी पुत्र ने अनुवाद किया कि- **'**शुष्कोवृक्षस्तिष्ठत्यग्ते**'**। भूषणभट्ट नामक द्वितीय पुत्र ने कहा- **'नीरसतरुरिह विलसति पुरतः'।** जिसे सुनकर उन्होंने छिपी हुई काव्यप्रतिभा वाले द्वितीय पुत्र को कादम्बरी के उत्तरार्द्ध भाग को पूर्ण करने का आदेश दिया। वस्तुतः उत्तरार्द्ध भाग को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं बाण की आत्मा ने पुत्र में संक्रमित होकर कार्य पूर्ण किया है। धनपाल ने उनके पुत्र का नाम पुलिन्ध्र बताया है।[9] डॉ. बूलर बाण के पुत्र का नाम भूषणबाण बताते है।[10]

---

[9] धनपालकृत तिलकमंजरी, पृ.- 4

[10] इण्ट्रोडक्शन ऑफ हर्षचरित, प्रो. काणे, पृ.- 4

2.3.7 कादम्बरी की कथावस्तु-

कादम्बरी की कथा का मूलस्रोत गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' है, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है, क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी (16। 183-248) तथा सोमदेव के कथासरित्सागर के लम्बक- 10, तरंग- 3 में इससे मिलती जुलती कथा प्राप्त होती है।[11] जिसे बाणभट्ट ने अपनी काव्यप्रतिभा और उदात्तकल्पना से नवसौन्दर्य प्रदान किया है।[12]

कादम्बरी की कथावस्तु उसके नायक के तीन जन्मो से सम्बन्ध रखती है। कथा का आरम्भ विदिशा के राजा शूद्रक से होता है जो दशार्ण प्रदेश या पूर्वी मालवा की राजधानी थी, इसे वर्तमान में भिलसा कहते हैं। वेत्रवती (बेतवा) नदी के तट पर यह नगर स्थित था। राजा शूद्रक का प्रभाव और वैभव कथा के प्रारम्भ में बताने के पश्चात् उसके दरबार में प्रतीहारी के साथ आने वाली चाण्डालकन्या का वर्णन आता है, जो राजा के दरबार में एक ऐसा शुक (तोता) लेकर आई है; जो मनुष्य की भाषा में बोलता है। दरबार में पहुँचने पर वह राजा शूद्रक की आर्या छंद में स्तुति करता है और अपने वर्तमान जन्म और जाबालि के आश्रम तक पहुँचने का वर्णन करता है। जहाँ मुनि जाबालि उज्जयिनी नरेश तारापीड के पुत्र चन्द्रापीड और उसके मित्र वैशम्पायन की कथा का वर्णन करते हैं। चन्द्रापीड दिग्विजय के प्रसङ्ग में हिमालय की तलहटी में प्रवेश करके अच्छोद नामक सरोवर के पास पहुँचता है। जहाँ वीणावादन करती हुई तपस्वमनी महाश्वेता का दर्शन करता है, जो एक गन्धर्व कन्या थी। महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी से चन्द्रापीड का परिचय कराती है, जिसने विवाह न करने का निश्चय कर रखा था। किन्तु प्रथम मिलन के पश्चात् चन्द्रापीड और कादम्बरी परस्पर अनुराग करने लगते है। चन्द्रापीड के पूछने पर महाश्वेता कुमारपुण्डरीक के साथ अपने प्रेम की कथा को सुनाती है। पिता तारापीड द्वारा बुलाये जाने पर चन्द्रापीड अपनी उज्जयिनी नगरी लौट जाता है, किन्तु उसका मित्र वैशम्पायन बहुत समय बीतने पर भी जब नहीं लौटता; तो चन्द्रापीड पुनः उसे खोजते हुए अच्छोद सरोवर पहुँच करके अपने मित्र के विषय में जानकारी एकत्र करता है। जिससे ज्ञात होता है कि महाश्वेता ने स्वयं पर आसक्त वैशम्पायन के प्रेमनिवेदन से रुष्ट होकर उसे शुक होने का श्राप दे दिया था

---

[11] डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल कृत कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन- पृ. 10

[12] डॉ. अमरनाथपाण्डे कृत बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन- पृ. 10

अपने अभिन्न मित्र के ऐसे अन्त को सुन चन्द्रापीड दिवंगत हो जाता है। इसी समय कादम्बरी वहाँ पहुँचती है और अपने प्रियतम को निष्प्राण देख स्वयं भी प्राणत्याग के लिये उद्यत होती है। उसी समय एक आकाशवाणी होती है, जिसमें महाश्वेता और कादम्बरी को अपने प्रेमी से भविष्य में मिलने का आश्वासन प्राप्त होता है, फलतः वह प्राणत्याग नहीं करती- ऐसी कथा का जाबालि उस शुक के सामने वर्णन करते हैं। तब शुक के हृदय में महाश्वेता के साथ पूर्वप्रेम की स्मृति हो आती है। वह राजा शूद्रक को बताता है कि इसके पश्चात् मैं जाबालि के आश्रम से उड़कर चलता हूँ, किन्तु आगे चाण्डालकन्या द्वारा पकड़ लिया जाता हूँ और आपके दरबार में लाया जाता हूँ। चाण्डालकन्या ने राजा शूद्रक से निवेदन किया कि मैं पूर्व जन्म में वैशम्पायन रूप धारी पुण्डरीक की माता लक्ष्मी हूँ। इस समय आपके और इसके पूर्वप्राप्त शाप की अवधि समाप्त हो गयी है। यह सुनकर राजा शूद्रक को (जो पूर्वजन्म में चन्द्रापीड थे) अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है और वह अपने प्राण त्याग देता है। फलतः चन्द्रापीड पुनः जीवित हो जाता है। कथा समाप्ति के बाद शुक भी शापावधि समाप्त हो जाने से प्राणत्याग देता है और पुण्डरीक पुनः जीवित हो जाता है। अन्त में पुण्डरीक और महाश्वेता का तथा चन्द्रापीड और कादम्बरी का पुनः मिलन होता है और वे आनन्द के साथ रहने लगते हैं। कादम्बरी कथा की यहीं समाप्ति होती है।

2.3.4. बोध प्रश्न

1. बाणभट्ट की कितनी रचनाएँ है**?**
2. बाणभट्ट कृत कादम्बरी कथा है या आख्यायिका**?**
3. **'**हर्षचरितम्**'** किस विधा का गद्यकाव्य है**?**
4. **'**हर्षचरितम्**'** में किसकी कथा वर्णित है**?**
5. कादम्बरी का मूल स्रोत किस कथा से लिया गया है**?**
6. कादम्बरी के उत्तरार्द्ध भाग की रचना किसने की**?**
7. कादम्बरी का मुख्य रस कौन सा है**?**
8. कादम्बरी में कितने जन्मों की कथा का वर्णन है**?**

-----o-----

इकाई- 3

बाणभट्टकृत गद्यसाहित्य का परिचय, गद्यशैली एवं काव्यसौन्दर्य

3.1. प्रस्तावना

3.2. उद्देश्य

3.3. बाणभट्टकृत गद्यसाहित्य का परिचय, गद्यशैली एवं काव्यसौन्दर्य

3.4. बोधप्रश्न

प्रस्तावना-

इस इकाई में बाणभट्ट के द्वारा रचे गये गद्यसाहित्य का परिचय दिया जायेगा। इससे विद्यार्थियों को बाणभट्ट के द्वारा विरचित गद्यसाहित्य का बोध होगा। छात्र यह जान सकेंगे कि बाणभट्ट ने किन गद्यकाव्यों की रचना की है**?** उनका साहित्य जगत् में क्या स्थान है**?** इसीलिये **'**बाणभट्टकृत गद्य साहित्य का परिचय**'** गद्यशैली एवं काव्यसौन्दर्य का ज्ञान विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है।

उद्देश्य-

1. इस इकाई के अध्ययन से M.A. संस्कृत के विद्यार्थियों को बाणभट्ट के द्वारा विरचित गद्यसाहित्य के ग्रन्थों का बोध होगा। उनकी गद्यशैली और उनके गद्यकाव्य को सौन्दर्य का भी बोध आसानी से हो जायेगा।
2. इसके अध्ययन से उन्हें बाणभट्ट के गद्य साहित्य की विस्तृत जानकारी होगी।
3. इसके अध्ययन से यह जानकारी छात्रों को सहज ही हो जायेगी बाणभट्ट ने अपने गद्यकाव्य विशेषतः कादम्बरी के शुकनासोपदेश में किस गद्यशैली का प्रयोग किया है। उसका कथानक क्या है।
4. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों का यह बोध भी सहजता से हो जायेगा कि

बाणभट्ट ने अपने दोनों गद्यकाव्यों में किस विधा का प्रयोग किया है उनकी वर्णनशैली किस प्रकार की है।

बाणभट्ट कृत गद्यसाहित्य का परिचय-

बाणभट्ट कृत गद्यसाहित्य के रूप में उनकी दो कृतियाँ सर्वप्रसिद्ध है।

1. 'हर्षचरितम्' नामक आख्यायिका ग्रंथ[13]

2. कादम्बरी कथाग्रन्थ।

परवर्ती गद्यसाहित्य में ये दोनों गद्यकाव्य गद्यभेद के उदाहरण बने।

परवर्ती संस्कृत गद्यकारों नें इन्ही का अनुसरण करते हुए अपने ग्रन्थों की रचना की।

3.3.1 हर्षचरितम्-

स्थाणेश्वर राजा हर्षवर्धन को केन्द्रबिन्दु के रूप में लिखा गया ग्रंथ है। इस कथा के प्रारम्भ में ही बाणभट्ट ने अपनी वंशावली का परिचय दिया है। वंश के आरम्भ के वर्णन में उन्होंने लोककथाओं और मिथकों का वर्णन किया है। फलतः ऐतिहासिक होने पर भी इसमें अलौकिक वृत्तान्तों का समावेश हो गया है। हर्षवर्धन के जीवन-चरित का वर्णन चतुर्थ उच्छ्वास से प्रारम्भ होता है। ग्रंथ का प्रारम्भ शिव की स्तुति से होता है। तत्पश्चात् 21 श्लोकों में बाणभट्ट ने पूर्ववर्ती व्यास, भट्टार हरिश्चन्द्र, प्रवरसेन भास, कालिदास इत्यादि कवियों का प्रशंसापूर्ण वर्णन किया है। इसके पश्चात् तीन प्रारम्भिक उच्छ्वासों में बाणभट्ट ने अपने वंश का परिचय देते हुए आत्मकथा लिखी है। शेष उच्छ्वासों में उन्होंने सम्राट हर्षवर्धन के पूर्वज पुष्पभूति का उल्लेख करते हुए उनके पिता प्रभाकरवर्धन का वर्णन किया है। इसी क्रम में हर्षवर्धन एवं उनके ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन और बहन राज्यश्री की उत्पत्ति एवं बाल्यावस्था तथा युवा होने तक की कथा वर्णित की है। आगे की सम्पूर्ण कथा सम्राट् हर्षवर्धन के जीवन को केन्द्रबिन्दु में रखकर लिखी गयी है।

---

[13] तथापि नृपतेर्भवत्या भीता निर्बहनाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्थोधो जिह्वाप्लवन चापलम्।। (हर्षचरित)

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक गद्यकाव्य के रूप में यह पहली रचना कही जा सकती है। इसकी कथा ऐतिहासिक होने से इसे ऐतिहासिक गद्यकाव्य कहा जा सकता है। यहाँ कथानायक हर्ष का व्यक्तित्व भले ही ऐतिहासिक है, किन्तु इसके कथानक में कविकल्पना पर्याप्त मात्रा में है। इस गद्यकाव्य में कही सरल वाक्यों का प्रयोग है, तो कहीं दुर्बोध समासों का प्रयोग हुआ है।

यदि काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से हम इस पर विचार करें, तो इससे कवि की अद्भुत वर्णनाशक्ति का परिचय मिलता है। इसका नायक हर्षवर्धन महान् सम्राट्, साहसी, कर्तव्यपरायण एवं दानपरायण है। उसका भाई राज्यवर्धन भी वीर, साहसी, योद्धा और आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चित्रित है। इस ग्रंथ में बाणभट्ट ने तत्कालीन, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक दशाओं का सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है।

आशय यह है कि इसमें न केवल राजोचित व्यवहार अपितु लोक विश्वास और आचार, आरण्य का जीवन, लौकिक जीवन, परिव्राजकों का जीवन और कलाकारों का कलाकौशल भी वर्णित है। जो सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आचार्य सोढ्ढल ने हर्षचरित के इस अद्वितीय वैशिष्ट्य का देखते हुए कहा है-

बाणस्य हर्षचरित निशितामुदीक्ष्याशक्तिं न केऽत्र कवितास्रमदं त्यजन्ति।।

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ में राजा हर्ष का चरित ही नहीं वर्णित है, अपितु तत्कालीन जनजीवन, लोकरीतियाँ, लोकविश्वास, लोकाचार, आख्यान और लोककथा के माध्यम से समाज और जीवन को एक सूत्र में पिरोकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। वनग्रामों और बीहड़वनों में विचरण करते हुए बाणभट्ट ने प्रकृति और पर्यावरण का सजीव चित्रण किया है। यद्यपि यह ग्रंथ अपूर्ण है, तथापि बाण ने जितने कथांश का वर्णन किया है वह उसके नायक सम्राट् हर्षवर्धन के साथ ही कवि की कीर्ति कौमुदी के प्रकाशस्तम्भ जैसा है। बाणभट्ट ने सम्भवतः आगे की कथा को उपनिबद्ध करना आवश्यक नहीं समझा, अन्यथा उसे आगे बढ़ाने का प्रयास वे अवश्य करते। तथापि कवि की कीर्तिकौमुदी को अक्षुण्ण रखते हुए आगामी विद्वानों के लिये बाणभट्ट ने सरस काव्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

3.3.2 कादम्बरी- यह इनका दूसरा गद्यकाव्य है। यह कथाशैली में उपनिबद्ध है।

हर्षचरित की भाँति इसकी कथा भी बाणभट्ट पूर्ण नहीं कर पाये, किन्तु उनकी आज्ञानुसार उनके पुत्र पुलिंदभट्ट या भूषणभट्ट ने इस ग्रंथ को पूर्ण किया। इसमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। स्वयं भूषणभट्ट ने एक श्लोक में यह बात स्वीकार की है कि पिता के अकस्मात् स्वर्गवासी हो जाने पर यह महान् कथाप्रबंध अधूरा रह गया, जिसे पूर्ण करने का मैने प्रयास किया न कि कवित्व के दर्प के कारण वे कहते हैं-

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धे विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।

दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य, प्रारब्धएष च मया न कवित्वदर्पात्।।"

तिलकमंजरीकार कवि धनपाल ने पुलिंध्र द्वारा बाण के काव्य की पूर्ति की सराहना की है। वे कहते हैं-

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।

किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः।।

(तिलक., प्रस्तावना-26)

कादम्बरी की कथा में नायक चन्द्रापीड और उसके मित्र वैशम्पायन की तीन जन्मों की कहानी है। इसका प्रारम्भ राजाशूद्रक के वर्णन से होता है, जिसकी राजसभा में चाण्डालकन्या एक संस्कृत मनुष्य की भाषा बोलने वाले शुक को ले आती है और अपना स्वयं का परिचय भी देती है कि वह पुण्डरीक की माता लक्ष्मी है। यह पूर्वजन्म का चन्द्रापीड का सखा वैशम्पायन था, जो वर्तमान में शुक के रूप में है। राजा शूद्रक स्वयं पूर्वजन्म में चन्द्रापीड था और उससे पूर्व जन्म में चन्द्रमा था। जिसे कामाग्नि से दग्ध पुण्डरीक ने धरती पर जन्म लेने का शाप दिया था। इस वृत्तान्त को सुनकर लक्ष्मी के वापस जाने पर राजा शूद्रक और वैशम्पायन का रूप शुक अपनी देह त्याग देते है। चन्द्रापीड का अविनाशी शरीर जिसे आकाशवाणी के बाद सुरक्षित रखा गया था, वह सजीव हो उठता है। इसी समय आकाश से उसका मित्र पुण्डरीक भी उतरता है और सबका मिलन हो जाता है।

यह कथा बृहत्कथा की लोककथाओं की परम्परा का अनुगमन करती है, जिसमें कथा के मध्य दूसरी कथा और उसके मध्य तीसरी कथा का गुंफन होता था। बाणभट्ट ने इस कथाशैली को अपनाया। बोलने वाला शुक, त्रिकालद्रष्टा महर्षि जाबालि के द्वारा

भूत, भविष्य और वर्तमान की घटनाओं का हस्तामलकवत् वर्णन मृत्युलोक से उतर हिमालय क्षेत्र में दिव्य अप्सराओं और गन्धर्वों का दिव्य प्रेम, शापवश जन्मान्तर की प्राप्ति, आगामी जन्म में भी पूर्वजन्म का स्मरण आदि लोककथाओं के अभिप्राय को चित्रित किया गया है।

बाणभट्ट की कथावर्णन की शैली ऐसी है कि जिससे काल का प्रवाह रूक जाता है। हम अपनी वर्तमान अवस्था से उठकर उस धरातल पर पहुँच जाते है, दिशा और समय अपनी गति से चलते हैं। वस्तुतः महाकवि बाणभट्ट ने इस कथा को आगे बढ़ाने में एक सेवकरहित सम्राट् की भाँति कार्य किया है, जो अपनी कथा के पीछे छत्र लगाये स्वयं चलता हुआ दास की भाँति सङ्कोच में है। बाण के जैसा शब्दचित्र उकेरने वाला कोई दूसरा कवि नहीं है। बाणभट्ट ने अपने जीवन की मार्मिक अनुभूतियों का कल्पना और यथार्थ के साथ अद्भुत समन्वय किया है। बाण का व्यक्तित्व और तत्कालीन समाज की पहचान कादम्बरी में गूढरूपेण सङ्क्रान्त है। उनकी महान् वंशपरम्परा के कारण उनकी शैली में उदात्तता और शास्त्रज्ञता प्रमाणित हुई है। समाज के मध्य और निम्न वर्णों से लगाव उनके साथ जुड़ने की उत्कट अभिलाषा ने उनकी कृतियों में गूढ मानवीय अर्थक्ता दी है।

पाञ्चाली रीति में रचना करने वाले बाणभट्ट ने अपनी शैली में गौडी और वैदर्भी दोनों के रीतियों वैशिष्ट्य को समाहित किया है। वे स्वयं पाञ्चाली का लक्षण बताते हुए भोजराज कहते हैं-

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।

शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

बाणभट्ट ने इस ग्रंथ में कई पृष्ठों तक चलने वाले एक ही वाक्य को अनेक विशेषणों और दीर्घसमासों से वर्ण्यविषय का आकार दिया है। उनका गद्य कही उत्कलिकाप्राय होता है, तो कही चूर्णक या मुक्तक रूप है। अपने विचारों को उन्होंने कहीं केवल दीर्घतर वाक्यों से, तो कहीं दो तीन पदों वाले छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा अर्थ को हृदयङ्गम करा देते है। चाण्डालकन्या, विंध्याटवी आदि के वर्णन में बाणभट्ट का एक-एक वाक्य जहाँ कई पृष्ठों में समाप्त होता है, वही अनेक स्थलों में उनकी वाक्यरचना वार्तालाप शैली में दिखायी देती है। जैसे पुण्डरीक को समझाते हुए

कपिञ्जल के वचन दृष्टव्य है-

"सखे पुण्डरीक, नैतद् त्वदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजन क्षुण्ण एष मार्गः धैर्यधना हि साधवः।"

बाणभट्ट ने इस रचना में उपमा, श्लेष, परिसंख्या आदि अलङ्कारों को एक माला के रूप में पिरो दिया है। वर्ण्यविषय के अनेक पक्षों को वे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों की शृङखला में पिरो देते है।

आशय यह है कि बाणभट्ट ने अपनी अद्भुत काव्य प्रतिभा से वर्ण्यविषय की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषताओं को साकार करके 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इस मान्यता को पुष्टता प्रदान की है।

कादम्बरी सदैव आकर्षण का केन्द्र रही है। स्वयं कवि ने मङ्गलाचरण के श्लोकों में इसकी विशेषता बताते हुए इसे स्वेच्छा से प्रियतम की शय्या की ओर जाने वाली (नवोढा बधू की भाँति) कहा है। कादम्बरी अपने रसपूर्ण विलासों से पाठकों के चित्त को आप्लावित करती है। (का. श्लोक 8) अतएव भूषणभट्ट का यह कथन नितान्त युक्त है-

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चितपि चेतयते जनोऽयम्।

कादम्बरी की इसी महत्ता और रसास्वादिता के कारण विद्वानों के मध्य 'कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते', 'सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी कथा' जैसी उक्तियाँ प्रचलित हो गयी थी। कीर्ति कौमुदीकार के मतानुसार-

'बाण की कादम्बरी कथारूपी ध्वनि को सुनकर कविजन अनध्याय का पालन करने लगते हैं। (द्र० कीर्तिकौमुदी 1/15)

3.3.3. बाणभट्ट की गद्यशैली-

बाणभट्ट के काल में गद्य के रूप में दो गद्यशैलियाँ प्रचलित थी। प्रथम सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमयी समासयुक्त शैली, द्वितीय सुललित पदों वाली आचार्य दण्डी की शैली। उस समय प्रचलित गद्यकाव्य के यही दोनों मानक या आदर्श थे। ऐसी स्थिति में बाणभट्ट ने सघन समासयुक्त ओजोमयी भाषा का प्रयोग किया।

दण्डी ने भी काव्यादर्श में समासबहुल ओजगुण को गद्य का प्राण बताया था- "ओजः समासभूयस्त्वम् एतद्गद्यस्य जीवितम्"। 51.808 बाणभट्ट ने गद्य की इसी शैली

को स्वीकार करते हुए उसके साथ गद्य की अन्य दोनों प्रचलित शैलियों समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया। हर्षचरित के प्रारम्भ में बाणभट्ट ने अपनी इस शैली के आदर्श को एक पद्य के माध्यम से बताया है-

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।

(हर्षचरित, प्रस्ता.-8)

आशय यह है कि यद्यपि सर्वथा मौलिक (नवीन) कल्पना, रुचिकर स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्पष्ट रूप से प्रतीयमान रस तथा दृढ़बन्धों वाली पदावली- इन समस्त गुणों का एकत्र समावेश दुष्कर है, तथापि बाणभट्ट ने इसके लिये प्रयत्न किया है। अपनी गद्यशैली का आदर्श उन्होंने कादम्बरी की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया है-

"हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिता कथाः।

निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पकपुष्पकुड्मलैरिव।।

आशय यह है कि बाण का गद्य उस चम्पा की माला की भाँति है; जिसके बीच-बीच में मालती की कलियाँ लगायी गयी हों। ऐसी माला और बाण की शैली भला किस सहृदय के मन का हरण नहीं करेगी।

3.3.4 बाणभट्ट की शैली का काव्यसौन्दर्य-

सरस्वती के वरद पुत्र महाकवि बाणभट्ट की काव्यप्रतिभा अनुपम है। भावात्मक गम्भीरता और कलापूर्ण चातुर्य से सुशोभित मन्दाकिनी की भाँति तरङ्गविलास से समन्वित है। अतएव बाणभट्ट को संस्कृत गद्यकाव्य का प्रकाशस्तम्भ कहा जा सकता है। महाकवि बाणभट्ट ने भाव और भाषा का ऐसा अद्वितीय समन्वय किया है कि सहृदयपाठकों का मनमयूर नृत्य करने को बाध्य हो जाता है। महाकवि बाणभट्ट नें काव्य में पाञ्चाली रीति का प्रयोग किया है। इस रीति में शब्दार्थ का सुन्दर समन्वय होता है। भोजराज ने बाणभट्ट की इस शैली की प्रशंसा करते हुए कहा है-

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।

शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

(सरस्वती कण्ठाभरण)

बाणभट्ट की गद्यकृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पाञ्चाली रीति के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। इनकी काव्यशैली में भाषा-भाव, शब्दार्थ एवं रस का सुन्दर सामञ्जस्य है। बाणभट्ट की मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी कृतियों में गद्यकाव्य की समस्त विशेषताओं को संग्रहीत करने का प्रयत्न किया है। उनका अभिमत है कि प्रतीच्य कवि अर्थगौरव और अर्थगाम्भीर्य पर बल देते हैं, जबकि दाक्षिणात्य कवि उत्प्रेक्षा पर बल देते है एवं गौड कवि शब्दाडम्बर पर बल देते हैं। जैसा कि हर्षचरित की प्रस्तावना में वे कहते हैं-

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः।। (हर्ष.-7)

इसके विपरीत बाणभट्ट का यह प्रयत्न रहा है कि श्रेष्ठ काव्य के समस्त गुण एक साथ काव्य में होने पर उसका उदात्तरूप प्रकट होगा। हर्षचरित में वे कहते है- 'करोम्याख्यायिकाम्भोधो जिह्वाप्लवनचापलम्। सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः। शब्दैराख्यायिकामातिशय्येव प्रतिपादकैः।।'

(हर्षचरित प्रथम उच्छ्वास- श्लोक 19-20)

बाणभट्ट की गद्यशैली में दीर्घ समासों और वाक्यों का प्रयोग दृष्टिगत होता है, तथापि प्रसङ्गवश छोटे-छोटे सरल वाक्यों का प्रयोग और उसकी व्यावहारिकता भी बाण की गद्यशैली में देखने को मिलती है। वस्तुतः बाणभट्ट ने गद्य में विषय के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग किया है। विन्ध्याटवी वर्णन के प्रसङ्ग में बाण श्रवणपरूष शब्दों एवं समासबहुल पदों का प्रयोग करते हैं- "क्वचित्प्रलयवेलेव महावराहद्रंष्टासमुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्वशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्दभज्यमान तुङ्गशालाकुला, क्वचिदुद्वृत्तमृगपतिनादभीतेव कण्टकिता विन्ध्याटवी।"[14]

इसी प्रकार चाण्डालकन्यावर्णन के प्रसङ्ग में बाण के द्वारा प्रसङ्गानुकूल भावों को प्रकट करने वाली पदावली का प्रयोग द्रष्टव्य है- "आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय

---

[14] द्र. कादम्बरी कथामुखम्- विंध्याटवीवर्णनम्

नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत सभाकुट्टिममाजघान, येन सकलमेव तद्राजकम् एकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन तेन वेणुलताध्वनिना युगपदावलितवदनम् अवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत्।

(कादम्बरीकथामुखम्- चाण्डालकन्यावर्णनम्)

तारापीड के मंत्री शुकनास यौवराज्याभिषेक से पूर्व चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दुर्गुणों से सावधान करते हुए उपयोगी शिक्षा देते हैं- इयं.....न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।"

(शुकनासोपदेश)

वस्तुतः बाणभट्ट की कादम्बरी में गद्य की तीनों विधाओं का प्रयोग दिखायी देता है। पूर्वोक्त गद्यखण्ड में तथा शूद्रकवर्णनप्रसङ्ग में चूर्णक शैली का गद्य ही दिखायी देता है। बाणभट्ट की गद्यशैली की मुख्य विशेषता यह है कि वस्तु हो या व्यक्ति उसका वर्णन करते समय वे पहले एक वाक्य में उसके मुख्य गुण को व्यक्त कर देते हैं। इसके पश्चात् वे 'यं', 'येन, यस्य' आदि सर्वनामों के द्वारा वाक्य प्रारम्भ करते हैं।[15]

बाणभट्ट की वाक्यरचना, समास संघटना, क्रियाप्रयोग, प्रत्यय प्रयोग बड़े ही सटीक होते हैं। जिससे वे वाक्य योजना के उत्कृष्ट शिल्पी कहे जा सकते है। वस्तुतः बाणभट्ट वाक्य सृष्टि के अनन्तर लय और भङ्गिमा से उसे सुन्दर कलेवर प्रदान करते हैं। बाणभट्ट की इस वाक्य योजना का परवर्ती गद्यकारों ने अनुकरण करते हुए उनकी शैली का महिमामण्डन किया है। जैसा कि प्रो. सुरेशचन्द्र पाण्डे जी ने कहा भी है- 'वाक्य के सुव्यवस्थित संयोजन से बाण की रचना में चित्रात्मकता का समावेश है, जिसकी सम्मोहनकारी आभा से पाठक उन्मत्त हो जाता है। भारतीय कवियों में चित्रशक्ति जितनी बाणभट्ट में है, उतनी कदाचित् कालिदास में भी नही है। कादम्बरी की वर्णविपुलता सर्वथा अभिवन्दनीय है।'

---

[15] द्रष्टव्य कादम्बरीकथामुखम्

(कादम्बरी सौरभम् की भूमिका, पृ. 12)

3.3.5 रस योजना- कादम्बरी की रस योजना चित्ताकर्षक है। काव्य में रस की भूमिका वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहते हैं-

स्फुरत्कलालाप विलास कोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।

रसेन शय्यां स्वयम्भ्युपागता कथाजनस्याभिनवावधूरिव।।[16]

अर्थात् यह कथा उस नववधू के समान है, जो स्वेच्छा से पति की शय्या की ओर बढ़ती हुई रस का संचार करती है। इस कथा में कौतुक की विशेष भूमिका होती है। इसका मुख्य रस श्रृंङ्गार है। बाणभट्ट में शृङ्गार के उभयपक्ष अर्थात् विप्रलम्भ और संयोग दोनों का हृदयावर्जक वर्णन किया है। डॉ. अमरनाथ पाण्डे की इस कविता से भी कादम्बरी में रसाभिव्यञ्जना की पुष्टि होती है-

कादम्बरीरसेवैव सौहित्यं जायते नृणाम्।

बाणभट्टवचोभङ्गीमनादृत्य कुतः सुखम्।।[17]

कादम्बरी में विप्रलम्भ शृङ्गार का उत्कृष्ट रूप वर्णित है। आचार्य विश्वनाथ भी शृङ्गार में पूर्वराग के वर्णन को अनिवार्य मानते है।[18] सर्वप्रथम महाश्वेता पुण्डरीक पर अनुरक्त होती है; तत्पश्चात् पुण्डरीक उस पर अनुरक्त होता है। आशय यह है कि प्रणय के चित्रण में बाण सिद्धहस्त हैं। इसमें कहीं वासना का निम्न रूप है, तो कहीं स्नेह का भव्य और उदात्त चित्रण। उनका प्रेम पश्चात्ताप की अग्नि में तपकर और खरा बन जाता है। कादम्बरी में शृङ्गार के साथ ही वात्सल्य रस का वर्णन भी दृष्टिगत होता है। राजा तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड को देखकर रोमाञ्चित हो जाते हैं, एवं रानी विलासवती भी वात्सल्यसिक्त होकर अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त करती हैं-

"वत्स कठिनहृदयस्ते पिता। येनेमाकृतिरीदृशी त्रिभुवनलालनीया क्लेशमति महान्तमियन्त कालं लम्भिता कथमसि सोढ्वानिति दीर्घामिमां- गुरुजनयंत्रणाम्।"

इसी प्रकार कवि ने करुण रस का भी प्रभावी चित्रण किया है। पुण्डरीक के वियोग

---

16 कादम्बरीकथा- श्लोक- 8

17 डॉ. अमरनाथ पाण्डे का बाणभट्टगौरवम्- गुरुकुलपत्रिका, पृ.- 349

18 साहित्यदर्पण- 3-187

में आर्तनाद करते हुए कपिञ्जल की स्थिति को देखकर करुणरस की धारा प्रवाहित हो उठती है। "हा हतोऽस्मि। दग्धोऽस्मि। हा वंचितोऽस्मि।" -कादम्बरी कथा

धर्मदास ने अपनी 'विदग्धमुखमण्डनकृति' में बाण की शैली के विषय में कहा है-

"रुचिरस्वरवर्णपदा रस भाववती जगन्मनो हरति।

सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।"

गोवर्धनाचार्य ने कहा है कि जैसे पहले शिखण्डिनी प्रागल्भ्य प्राप्ति के लिये शिखण्डी बन गयी थी वैसे ही पुरुषरूप में अधिक प्रागल्भ्यप्राति हेतु वाणी बाण बन गयी।

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तपवगच्छामी।

प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वा वाणी वाणो बभूव हा

वस्तुतः बाणभट्ट की इसी विशेषता के कारण सहृदय आलोचक 'बाणस्तुपञ्चाननः' और 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' जैसी उक्ति प्रसिद्ध हो गयी थी।

3.3.6 अलङ्कार योजना-

महाकवि बाणभट्ट अलङ्कारों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। एक वर्णन की प्रस्तुति में वे अनेक अलङ्कारों का प्रयोग करके वर्णनीय वस्तु का मण्डन करते हैं। फलतः काव्य में सरसता आ जाती है और सहृदय पाठक कविवर्णित भावभूमि से तादात्म्य प्राप्त कर आनन्द विभोर हो जाता है। उनके वर्णन में अलङ्कारों का वैविध्य कोमल अभिव्यञ्जनाओं के साथ स्फुरित होने लगता है। स्वभावोक्ति, श्लेष, परिसंख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि कवि के प्रिय अलङ्कार हैं। उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है- 'ग्रहैरिव गृह्यन्ते भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते....मृषावादविपाकमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति।'

(शूकनासोपदेश)

आशय यह है कि बाणभट्ट का उत्प्रेक्षा कौशल अद्भुत है। उन्होंने गुणोत्प्रेक्षा, द्रव्योत्प्रेक्षा जात्युप्रेक्षा, क्रियोत्प्रेक्षा आदि विविध उत्प्रेक्षा प्रयोगों का सुन्दर प्रयोग किया है। इसी प्रकार उपमालङ्कार का भी वे सुन्दर प्रयोग करते हैं-

"हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृत-राजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह इव भगीरथप्रवृत्तः.....।"[19]

इसी प्रकार परिसंख्या अलङ्कार का सुन्दर उदाहरण भी दर्शनीय है- "यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयतिमहींचित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, स्त्रीषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, सार्य्यक्षेषु शून्यागृहाः न प्रजानामासन्।"

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि बाणभट्ट की उपमाएँ और उत्प्रेक्षायें वर्ण्य विषय में सौन्दर्य भरने में सक्षम है। इनकी उपमा बाह्य शब्दसाम्य और आभ्यन्तर भावसाम्य को लेकर तो चलती ही हैं, साधारण धर्म का चयन भी वे सटीक करते हैं। ये अलङ्कार पाण्डित्यप्रदर्शन तथा भाषा को आभा प्रदान करने के साथ ही चमत्कार उत्पन्न करते है इसके साथ ही विषय के गुणों को स्पष्टीकरण और विषय विस्तार भी देते है।

3.3.7 प्रकृतिचित्रण-

बाणभट्ट अन्तः एवं बाह्य द्विविध प्रकृति के मनोरम चित्रण में निपुण है। प्रकृति का सजीव चित्रण उनकी मुख्य विशेषता है। प्रकृति के अनुरूप वातावरण का सृजन उनके काव्यसौन्दर्य को अधिक निखार प्रदान करता है। जब वे तपोवन का वर्णन करते हैं; तो उनका चित्रण हृदय में पवित्रता का संचार करता है। जब वे विन्ध्याटवी (वन) का चित्रण करते हैं तो हृदय में भय का सञ्चार होता है; जबकि चाण्डालकन्यावर्णन और शुकवर्णन के प्रसङ्ग में कुतूहल उत्पन्न होता है। यद्यपि बाणभट्ट की अलङ्कारप्रियता से प्रकृतिचित्रण की स्वाभाविकता बाधित होती है, तथापि समग्रचित्रण पर ध्यान देने से यह आरोप निरस्त हो जाता है। क्योंकि बाणभट्ट पहले प्रकृति का सरस भाषा में स्वाभाविक वर्णन करते हैं, तदनन्तर श्लेषादि अलङ्कारों का आश्रय लेते हैं।

प्रकृतिवर्णन के अवसर पर कवि विशद एवं सजीव वर्णन करते हैं। आश्रम, सरोवर, जाबालि का वर्णन, विन्ध्याटवी, दण्डकारण्य, शूद्रकसभामण्डप आदि का उन्होंने सजीव चित्रण किया है। ऐसे वर्णनों के प्रसङ्ग में उनकी भाषा विषयानुकूल भाव का अनुसरण करती है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

---

[19] कादम्बरी- शूद्रकवर्णनप्रसङ्ग।

"एकदातु नातिदूरोदिते वननलिनदलसम्पुट किञ्चिदुन्मुक्तवाटलिम्नि भवति मारीचिमालिनिः....।

कादम्बरी-शूद्रकवर्णनम्

बाण का प्रकृतिचित्रण प्रायः अन्तः प्रकृति के अनुकूल होता है। यह विशेषता सूर्योदय, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, ऋतुवर्णन आदि के प्रसङ्ग में दृष्टिगत होती है। जहाँ विषय भावप्रधान गम्भीर होता है, वहाँ उनकी लेखनशैली अत्यन्त सबल दिखायी देती है। ऐसे अवसरों पर वाक्य छोटे एवं विशेषणरहित होते हैं। दीर्घसमास नहीं होते। "उपदेश के समय वे अत्यन्त सरस शैली का प्रयोग करते हैं। यह शैली शुकनासोपदेश में द्रष्टव्य है-

"गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गद्वुद्वुचञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविध सङ्क्रान्तिः। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया.....। यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति।"

आशय यह है बाणभट्ट अवसरानुकूल भाषा के प्रयोग में सिद्धहस्त है। कादम्बरी में वे गद्य की चूर्णकादि अनेक शैलियों का प्रयोग करते हैं। प्रकृतिचित्रण में उन्होंने प्रकृति के मनोरम रूप का चित्रण करने के साथ ही भयानकरूप का चित्रण भी विस्तार से किया है। अपने प्रकृतिवर्णन में उन्होंने श्लेषमूलक उपमाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। यह कार्य प्रकृति के सूक्ष्मपर्यवेक्षणके विना संभव नहीं था। (द्र. अच्छोदसरोवरवर्णन)

शुकनासोपदेश का कथासार-

महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित गद्यकाव्य कादम्बरी का एक अंश 'शुकनासोपदेश है। विद्याध्ययन के पश्चात् राजकुमार चन्द्रापीड के लौटने के पश्चात् उसके पिता तारापीड उसका राज्याभिषेक करना चाहते हैं। इससे पूर्व राजकुमार चन्द्रापीड राज्य के प्रधान अमात्य शुकनास के घर जाते। जहाँ मन्त्र शुकनास राजकुमार चन्द्रापीड को लोकव्यवहार हेतु उपयोगी उपदेश देते हैं, अतएव इस अंश का नामकरण 'शुकनासोपदेश' किया गया है। चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए शुकनास कहते हैं कि यद्यपि तुम समस्त शास्त्रों में पारङ्गत हो चुके हो, समस्त विद्याओं का अध्ययन भी

कर चुके हो, तथापि युवावस्था के द्वारा उत्पन्न अभियान अत्यधिक गहन और उस अंधकार के जैसा है। जो न सूर्य के द्वारा, न दीपक के द्वारा और न ही मणि (रत्न) के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार लक्ष्मी का मद, ऐश्वर्यय रूपी तिमिरान्ध रोग, अहङ्कार रूपी दाहज्वर, विषयजन्य अज्ञान, विषयोपभोग की लालसा रूपी मल (गंदगी), राज्यशुकरूपी सन्निपात निद्रा (मोह) आदि मनुष्य का गहरे संकट में डालकर नष्ट कर देता है। आपको जन्म से ही ऐश्वर्य प्राप्त है। युवावस्था में विद्यमान आपका सौन्दर्य अनुपम है। आप अद्वितीय शक्ति से सम्पन्न हैं। ये सभी लोकलुभावन होने पर भी महान् अनर्थपरम्परा (अवगुणों का स्थान) है। इनके कारण युवावस्था के प्रारम्भ में ही बुद्धि भ्रमित हो जाती है, दृष्टि रागमयी हो जाती है। विषयोपभोग की लालसा बढ़ती जाती है। मन विषयों की ओर आसक्त होने से उन्हीं में डूबा रहता है। विषयों के प्रति यह आसक्ति मनुष्य को नष्ट कर देती है।

शुकनास चन्द्रापीड से कहते हैं कि क्योंकि अभी आपका चित्त निर्मल है तथा विषयभोग का आस्वाद आपने नहीं किया है, अतः आपके लिये उपदेश का अभी उपयुक्त अवसर है; क्योंकि आप कल्याण के इच्छुक हैं। वस्तुतः यह उपदेश पुरुषों के लिये उस स्नान की भाँति है, जो जलरहित होने पर भी समस्त मलों को धोने में समर्थ है। राजाओं के लिये गुरुओं का उपदेश विशेष उपयोगी भी है, क्योंकि वे राज्यलक्ष्मी के मिथ्याभिमान से ग्रस्त रहते हैं। मैं आपको सबसे पहले राज्यलक्ष्मी के दोषों को दिखाता हूँ- हे युवराज! क्षीरसागर से यह राज्यलक्ष्मी आसक्ति, कुटिलता, चंचलता, वशीकरण, अभिमान, नैष्ठुर्य आदि दुर्गुणों को साथ लेकर उत्पन्न हुई है। यह चंचला वीर योद्धाओं के खड्ग के मध्य विचरण करती है। यह लक्ष्मी क्षीरसागर से उत्पन्न पारिजात से राग, चन्द्रखण्ड से वक्रता, उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूट से मादकता, कौस्तुभमणि से निष्ठुरता को साथ लेकर प्रकट हुई है। यह प्रेम की उपेक्षा करती है, नीच प्रकृतिवाली है। दुख से परिपाल्य और अत्यधिक चञ्चल है। संरक्षित किये जाने पर भी रुकती नहीं। यह स्नेह, कुल, सौन्दर्य, शील, चातुर्य, ज्ञान, आचार, सत्य, श्रेष्ठता आदि का विचार नहीं करती। मायावी नगर की भाँति देखते-देखते नष्ट हो जाती है। धूर्तों के पास रहना पसन्द करती है। इसके साथ ही मनुष्यों में अपने तृष्णा, दर्प, जडता, कर्तव्यविमुखता, लाभ, अमङ्गलकारी स्वभाव, कृपणता, कटुता, कलह आदि दुर्गुणों को सङ्क्रान्त कर देती है। इसकी सङ्गति में राजा लोग भी अपने चतुर हृदय की

निर्मलता, क्षमाभाव, सज्जनता, सत्यवादिता, यश आदि सद्गुणों का त्यागकर इसके अवगुणों को ग्रहण कर लेते हैं। अपनी छलनीति से इसका आश्रय प्राप्त राजा स्वार्थपरायण, धनलोलुप, धूर्त, जुआप्रेमी, परस्त्रीगमनपरायण, शिकार, मद्यपान, प्रमाद, स्वपत्नीत्याग कराने वाले, गुरुजनों का अनादर करने वाले, नाचगाने में आसक्ति रखने वाले, स्वेच्छाचार, देवों का अपमान करने वाले, मन की चपलता आदि दुर्गुणों को गुण की भाँति देखते हैं। धूर्तलोग ऐसे राजाओं का मनसा उपहास करते हैं। प्रत्यक्षतः प्रशंसा देवतायोग्य स्तुतियों के द्वारा ये राजाओं को ठगते हैं। धन के मद से भ्रमित चित्त वाले वे राजा अज्ञानता के कारण धूर्तों की बात को सच मानकर व्यर्थ अभिमान करते हैं। मनुष्य होते हुए भी स्वयं को देवता समझते हुए अपनी महिमा प्रदर्शित करते हैं और सबके उपहास के पात्र बनते हैं। ऐसे राजाओं की बुद्धिभ्रष्ट हो जाती है। फलतः वे सर्वगुणसम्पन्न कर्तव्यपरायण लोगों की उपेक्षा करते है। दिन-रात कार्य छोड़ कर देवता की भाँति अपनी स्तुति करने वालों के प्रति वे सदा अनुकूल रहते हैं। अतएव हे राजकुमार! चन्द्रापीड इस प्रकार के हजारों कुटिल और कष्टकारी चेष्टाओं के कारण कठोर राज्यशासन तथा अज्ञान को जन्म देने वाले इस यौवन में तुम ऐसा प्रयास करो कि लोग तुम्हारी अपमान न करें, सज्जन निंदा न करें, गुरुजन तुम्हें धिक्कारें नहीं, मित्र उपालम्भ (उलाहना) न दें, विद्वान् तुम्हारे विषय में शोक न करें। चतुरलोग तुम्हें वंञ्चित (ठगना) न करें, धूर्तसेवक तुम्हें लूटे या धोखा न दें। पराई स्त्रियाँ तुम्हें लुभाये नहीं। कामदेव तुम्हें प्रसन्न करके विषयभोग के कुमार्ग पर न ले जायें।

हे राजकुमार! चन्द्रापीड में जानता हूँ कि आप स्वभावतः धीर और संस्कारवान् है। धन का गर्व चंचल चित्त और मूर्खबुद्धि लोगों को होता है। मैनें उक्त उपदेश विद्याविनय सम्पन्न आपकी गुणग्राहिता को भली भाँति जानकर दिया है। "कोई मनुष्य अत्यन्त विद्वान् बुद्धिमान्, धैर्यवान्, कुलीन और परिश्रमी भले ही हो; यह दुष्टचारिणी लक्ष्मी उसे भी दुष्ट बना देती है। अतएव "हे राजपुत्र तुम अपने मङ्गलमय यौवराज्याभिषेक के अवसर पर कल्याणपरम्परा को प्राप्त करो। अपने कुल की परम्परा से प्राप्त राजलक्ष्मी का भार ग्रहण करो। दुष्टजनों का विनाश और बन्धुजनों का उत्कर्ष करो। राज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय के लिये प्रस्थान करके पिता के द्वारा पहले जीती गयी पृथ्वी को पुनः जीत करके चक्रवर्ती सम्राट् का पद प्राप्त करो।" यही तुम्हारे प्रताप के विस्तार का उचित समय है। क्योंकि राजा का प्रताप सर्वत्र प्रसारित होने पर

सर्वज्ञ महायोगी की भाँति सर्वत्र सफल होता है। त्रिलोकदर्शी महात्मा की भाँति सब उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। इतना कहकर मन्त्री शुकनास चुप हो जाते हैं।

बोध प्रश्न-

1. बाणभट्ट की गद्यकृतियों का परिचय दीजिए?
2. बाणभट्ट ने किस ऐतिहासिक गद्यकाव्य की रचना की थी?
3. कादम्बरी कथा है या आख्यायिका?
4. बाणभट्ट ने किस गद्यशैली में रचना की है?
5. 'ओजः समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम्' किसकी उक्ति है।
6. कादम्बरी कथा में अङ्गीरस कौन है?
7. बाणभट्ट के प्रकृतिचित्रण की विशेषता बताइये?
8. आचार्य शुकनास कौन थे?
9. शुकनासोपदेश में किसे उपदेश दिया गया है?

-----o-----

इकाई- 4

शुकनासोपदेश का अनुवाद एवं व्याख्या

(एवं 'समतिक्रामत्सु' से ‘पताका सर्वविनयानाम्’)

1. प्रस्तावना

2. उद्देश्य

3. 'शुकनासोपदेश' का अनुवाद एवं व्याख्या "एवं 'समतिक्रामत्सु' से पताका सर्वविनयानाम्" तक।

4. बोध प्रश्न

प्रस्तावना-

बाणभट्ट कृत गद्यसाहित्य के परिचय, शैली एवं काव्यसौन्दर्य के ज्ञान के पश्चात् शुकनासोपदेश के प्रारम्भिक गद्यखण्डों का अनुवाद और व्याख्या का अध्ययन अपेक्षित है। इसीलिये इस खण्ड का अध्ययन MAST 108 संस्कृत के छात्रों के लिये प्रस्तावित किया गया है। विद्यार्थियों के संस्कृत ज्ञान के लिये इसका ज्ञान आवश्यक है।

उद्देश्य-

---

1. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों के शब्दकोश में वृद्धि होगी। छात्र संस्कृत से हिन्दी अनुवाद सीख सकेंगे।
2. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों को यह बोध होगा कि राज्याभिषेक के पूर्व राजा तारापीड ने चन्द्रापीड को आचार्य शुकनास के पास क्यों भेजा था।
3. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों को गद्यांशों की साहित्यिक व्याख्या शैली का बोध होगा।
4. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों को यह ज्ञान होगा कि गद्यखण्डों में अलङ्कार

और रीतियों का प्रयोग कैसे किया गया है।

5. इस खण्ड के अध्ययन से छात्रों को संस्कृत गद्यखण्डों में वर्णित रस, अलङ्कार शैली के बोध के साथ ही उसके विशेष अर्थ का भी बोध भी विशेष उपखण्ड से होगा।

शुकनासोपदेश

शुकनासोपदेश – 1. एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिक्रीर्षुः प्रतिहारानुपकरणसंभारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचित् दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् शुकनासः सविस्तरमुवाच-

संस्कृत व्याख्या- महाकवि बाणभट्टेन प्रणीता कादम्बरी इति नाम्नी कथामध्ये चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकपूर्वं अमात्यशुकनासेन चन्द्रापीडं उपदिष्टमनुशासनं उपस्थापयति कविना। अस्मिन्गद्यखण्डे इदानीं महाकविनां 'शुकनासोपदेश प्रकरणं' प्रारम्भन् उक्तवान्-

एवं- पूर्वोक्त प्रकारेण समतिक्रामत्सु- गच्छत्सु व्यतीतेषु वा दिवसेषु- दिनेषु'

नृपति तारापीडेन चन्द्रापीडस्य- चन्द्रापीड इत्याख्यस्य नृपतितारापीड पुत्रस्य यौवराज्याभिषेकं- यौवराज्ये योऽभिषेकस्तं चिकीर्षुः-कर्तुं विधातुं वा इच्छुः प्रतीहारान्द्वारपालान् उपकरणस्य- अभिषेके यदावश्यकं तत् सामग्रयाः संभारःसमूहः तस्य संग्रहार्थं आनयनार्थम् आदिदेश- आज्ञां समादिशत्। समुपस्थितः- सञ्जातो यौवराज्याभिषेको यस्य स तं कदाचित्- कस्मिंश्चित् काले दर्शनार्थम्- दर्शनं कर्तुम् आगतं- समायातम् आरूढविनयमपि-आरूढः-प्ररूढः विनयावनतम्। चन्द्रापीडं किचिन्निगूढांभिप्रायः- विनीततरम्विनम्रतरम् इच्छन्-वाञ्छन् शुकनासः-शुकनास इत्याख्य प्रधानामात्यः सविस्तरम्- विस्तारेण सहितम् यत् उवाच- यद् अब्रवीत् तदेवाह-

हिन्दी अनुवाद- इस प्रकार (कतिपय) दिन व्यतीत हो जाने पर (राजकुमार) चन्द्रापीड का युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा वाले राजा (तारापीड) ने

प्रतीहारों (द्वारपालों) को (अभिषेक हेतु) सम्पूर्ण सामग्री एकत्र करने के लिये आदेश दिया। यौवराज्याभिषेक का समय समीप आने पर किसी समय (दिन) दर्शन के लिये (मन्त्री शुकनास के समीप) आये हुए उस (चन्द्रापीड) को विनयसम्पन्न होने पर भी (उसे) और अधिक विनीत बनाने की इच्छा से (मन्त्री) शुकनास ने विस्तारपूर्वक कहा (उपदेश दिया)।–

पदार्थमीमांसा- एवं- पूर्वोक्त प्रकार से अथवा इस प्रकार से विविध प्रकार की क्रीडाओं को करते हुए समतिक्रामत्सु-सम्+अति+क्रमु+शतृप्रत्यय+सप्तमी बहुवचन = समतिक्रामत्सु- व्यतीत हो जाने पर, 'यस्य च भावे भावलक्षणम्' नियम से यहाँ भाव सप्तमी हुई है। दिवसेषु- दिन के। यौवराज्याभिषेकम्- युवा चासौ राजा युवराजः तस्य कर्म यौवराज्यम् (युवराज+भावेष्यञ्) तस्मिन् अभिषेकः यौवराज्याभिषेकः तम्। चिकीर्षुः- करने की इच्छा वाले, (कृ+सन्+उः) प्रतीहारान्- द्वाररक्षकों को उपकरणसम्भारसंग्रहार्थम्- अभिषेकसम्बंधी सामग्री समूह एकत्र करने हेतु। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं समुपस्थितः (सम्+उप+ष्ठा+क्त) यौवराज्याय अभिषेकः यस्य तम्यौवराज्याभिषेक वाला। यहाँ क्रिया के भूतकालिक न होने पर भी "आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या" नियम से 'क्त' प्रत्यय हुआ है। आगतम्- (आ+गम्+क्त) आये हुए। आरूढविनयम्-आरुढः विनयाय तम्- विनयसम्पन्न को, आरुढः आ+रुढ+क्त) विनीततरम्- अतिशयेन विनीतः विनीततरः (विनीत+तरप्)। कर्तुम् इच्छन्- करने की इच्छा से (कृ+तुमुन्, इष्+शतृ) सरविस्तरम्, शुकनासः- शुकनास ने विस्तरेण सहितम्- विस्तार से। उवाच- कहा, उपदेश किया (बू, लिट् लकार, प्र० पु० एकवचन)।

विशेष-1- इस गद्यांश में मन्त्री शुकनास चन्द्रापीड को व्यवहार की शिक्षा देते हैं। 2. इस गद्यखण्ड से चन्द्रापीड की चारित्रिक विशेषताओं का बोध होता है। 3. इस गद्यांश में चन्द्रापीड के बहाने कवि पाठकों को उपदेश देता है कि लक्ष्मी का नशा और युवावस्था का अहङ्कार अहितकर परिणाम देते हैं। अतएव इस अवस्था में एवं धनवान् होने पर विवेक का परित्याग नहीं करना चाहिए।

4. यहाँ प्रयुक्त 'एवं' निपात पूर्वकथा के संदर्भ को सूचित करता है।

शुकनाशोपदेश- 2. "तात चन्द्रापीड!, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते

नाल्पमप्युपदेष्टव्यम् अस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमवर्तिसाध्ययमपरम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचबध्ये। रागामलावलेपः। अजस्रम। क्षपावसानप्रबोधा घोरा चा राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वमानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परां सर्वा अविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवायः।

संस्कृतव्याख्या - 'तात चन्द्रापीड- हे पुत्र! चन्द्रापीड ते- तव नाल्पमप्युपदेष्टव्यम्- अल्पमपि- किञ्चिदपि उपदेष्टव्यम्- वक्तव्यं नास्ति। तत्र हेतुमाह- अधीतसर्वशास्त्रस्य- अधीतानि पठितानि सर्वशास्त्राणि येन सः तथा तस्य सर्वविधपठितशास्त्राणि वेदादीनि येन तस्य तादृशस्य वा। अत्र सर्वपदेन गृहीतशास्त्रस्यापि परिग्रहः। अधीतशास्त्रत्वेऽपि तत्त्ववित्त्वाभावात् उपदेष्टव्यम् अस्तीत्याह विदितवेदितव्यस्य-विदितं-ज्ञातं वेदितव्यम्-शास्त्राभिप्रायो येन तस्य स्वाशयमुद्घाटयति-केवलं च किञ्चेति अर्थपरं निसर्गतः एव स्वभावतः प्रकृतित एव अभानुभेद्यम्- असूर्योच्छेद्यम्, अरत्नालोकोच्छेद्यम्- न रत्नानां मणीनाम् आलोकेन उच्छेद्यम् दूरीकर्तुम योग्यम् विनाशयितुं शक्यम् वा, अप्रदीपप्रभानेयम्- न प्रदीपप्रभया- गृहमणिकान्त्या अपनेयम् दूरीकर्तुं योग्यम्, अतिगहनम्- अतिशयेन गहनम्, अलब्धमध्यम् यौवनं- तारुण्यम् ततः प्रभव उत्पत्तिः यस्य एवम्विधम् तमोऽज्ञानम्। अपरिणामोपशमो- न विद्यते परिणामेनोपशमो यस्य स दारुणः- भयावहः लक्ष्मीमदः- द्रव्यमदः द्वितीयः हेतुः। अर्थात् परिणामोपशम ओषध्यादिषु प्रसिद्धः; किन्तु विपरीतमत्र वयः परिणामेऽपि नोपशमः लक्ष्मीमदः। कष्टं-दुखरूपमपरं तृतीयम् ऐश्वर्यम् एव तिमिरान्धकारं तेनान्धत्वम् प्राप्तम्, अनञ्जनवर्तिसाध्यम्- न अञ्जनस्य वर्त्या शाध्यम् ऐश्वर्यरूपी तिमिरान्धत्वम् इत्यर्थः। अर्थात् साञ्जनवर्त्या तिमिरान्धत्वं विनश्यति; किन्तु एतद्तिमिरान्धत्वं निवर्तयितुमशक्यम् इतिभावः। अशिशिरोपचारहार्यो- न शिशिरैः शीतलैरुपचारैः चन्दनादिभिः हार्यः दूरीकर्तुम् योग्यः अतितीव्रो-अतिशयेन तीव्रः कठिनः दर्पो सम्पत्यहङ्कारः स एव दाहज्वरः-तीव्रतापः ज्वरः तस्य ऊष्मा। सततं-निरन्तरं अमूलमन्त्रगम्यो-मूलमन्त्रैरगम्यो निवर्तयितुमशक्यः। अत्र मूलमन्त्रोपलक्षणेन

मणिमधुकरादिविषोत्तारणाम् सर्वेषांमपि संग्रहः। विषमः। कठिनः विषयविषास्वादमोहः- विषयरूपी विषस्य य आस्वादःतेन मोहः। अस्नानशौचवध्यः- नित्यं सर्वदा स्नानेन शौचेन न वध्यो न विनाश्य एवं विधो रागः विषयाभिलाषः स एव मलः पङ्कः तस्य अवलेपः सम्पर्कः। अजस्रंम्-निरन्तरं न विद्यते क्षपावसाने- रात्र्यन्ते प्रबोधो उन्निद्रत्वं यस्याम् एतादृशी घोरा च राज्यसुखसंन्निपातनिद्रा- राज्याधिपत्यस्य यत् सुखानां सन्निपातः संघातः स एव निद्रा भवतीति हेतोः विस्तरेण चारम्बारेण अभिधीयसे- वक्तव्योऽसीत्यर्थः। -गर्भेश्वरत्वम्-गर्भादेव ईश्वरः गर्भेश्वरः तस्यभावः गर्भेश्वरत्वम्, अभिनवयौवनत्वम्- अभिनवं यौवनं यस्य सः अभिनवयौवनः तस्य भावः (बहुव्रीहिः), अप्रतिमरूपत्वम् अप्रितमंरूपं यस्य सः (बहुव्रीहिः) तस्य भावः अमानुषशक्तत्वम्- मानुषाणामियम् मानुषी न मानुषी अमानुषी, अमानुषी शक्तिः यस्य तत्। अनर्थपरम्परा- अनर्थानांपरम्परा (षष्ठीतत्पुरुषः)। अत्र चकारनिपातः समुच्चयार्थे प्रयुक्तः। इति- समाप्तौ इयं महती- गरीयसी सर्वा-समग्रा अनर्थपरम्परा-कष्टपरम्परा। एषां पूर्वोक्तानाम् एकैकमपि अविनयानां-दुर्गुणानाम् आयतनम्-स्थानं किमुत समवायः- एतेषां समुदायस्य दुर्बुद्धिजनकत्वे तुं किं भण्यते।

हिन्दी अनुवाद- (तात चन्द्रापीड) "पुत्र चन्द्रापीड! ज्ञातव्य वस्तुओं के ज्ञाता, समस्त शास्त्रों के अध्येता तुम्हारे लिये कुछ भी उपदेश करने योग्य नहीं है केवल यौवनकाल में उत्पन्न अज्ञानरूपी अतिगहन अन्धकार स्वभावतः ही न सूर्य के द्वारा भेदा जा सकता है, न मणियों की कान्ति से विनष्ट किया जा सकता है। न दीपकों की ज्योति से दूर किया जा सकता है। धन का धन से उत्पन्न नशा ऐसा तीक्ष्ण होता है कि अन्तिम अवस्था (वृद्धावस्था) में भी शान्त नहीं होता। ऐश्वर्यरूपी अन्धकार से उत्पन्न (रतौंधी) अन्धापन अञ्जन शलाका से भी दूर नहीं होता। अहङ्काररूप दाहकज्वर की गर्मी शीतलउपचारों से भी शान्त नही होती। विषयरूपी विष के सेवन (आस्वाद) से उत्पन्न मूर्च्छा (मोह) ऐसी विकट होती है, जो निरन्तर (औषधियों और) मन्त्रों के प्रयोग से भी नहीं जाती। राग (विषय आसक्ति) रूपी मल का लेप (ऐसा विकट होता है कि) नित्यस्नान और शुद्धिकरण से भी नही धुलता (नष्ट होता) है। राज्य सुखरूपी संघात (सन्निपात ज्वर) की घोर निद्रा निरन्तर न समाप्त होने वाली रात्रि के अन्त में भी नहीं समाप्त होती- इस कारण विस्तार से आपसे कहा जा रहा है। गर्भेश्वरत्व, नवीन यौवन, अप्रतिमरूपता और अमानुषी (दैवी) शक्ति- ये सब निश्चित रूप से अनर्थ की दीर्घ-

परम्परा है।

पदार्थमीमांसा- तात चन्द्रापीड- हे पुत्र 'पूज्ये पितरि पुत्रे वा तातः स्मृतो बुधैः' इत्यादि वचन से यह सिद्ध होता है कि इस शब्द का प्रयोग पहले पूज्य व्यक्ति, पुत्र या पिता के लिये होता था; जो अब सभी प्रिय जनों के लिये होता है। विदितवेदितव्यस्य- ज्ञातव्य वस्तुओं का ज्ञाता (विद्+क्त) तम् विदितम् वेदितव्यम् (विद्+तव्यत्) ये तस्य। अधीतसर्वशास्त्रस्य- सभी शास्त्रों का अध्ययन करने वाले, अधीतानि सर्वाणि शास्त्राणि येन तस्य (बहुव्रीहिसमास), उपदेष्टव्यम्- उपदेश देने योग्य, उप+दिश्+तव्यत्- 'तव्यत्तव्यानीयरः' से। केवलञ्च- केवल, फिर भी, यहाँ च निपात का प्रयोग वैभिन्य प्रकट करने के अर्थ में हुआ है। निसर्गतः एव-स्वभाव से ही। अभानुभेद्यम्- न भानुना भेद्यम् (भिद्+यत्) सूर्य के प्रकाश से भी दूर न होने वाला। अरत्नालोकोच्छेद्यम्- न रत्नानामालोकेन छेद्यम्- मणियों की कान्ति से भी नष्ट न होने वाला। अदीप-प्रभापनेयम्, नदीपानां प्रभया अपनेयम्- दीपकों के प्रकाश से भी दूर न होने वाला (अप्+नी+यत्)। यौवनप्रभवम्- युवावस्था से उत्पन्न। यौवनं प्रभवः यस्य तम्। अपरिणामोपशमः- न परिणामे उपशमःयस्य सः (बहुब्रीहिसमास) दारुणः- तीक्ष्ण लक्ष्मीमदः- लक्ष्मी का मद, लक्ष्म्यामदः (षष्ठीतत्पुरुष)। कष्टम्- कष्टप्रद, अनञ्जनवर्तिसाध्वम्- अञ्जन की शलाका से भी न ठीक होने वाला। ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्- ऐश्वर्यरूपी तिमिररोग (रतौधी) से उत्पन्न अन्धापन, ऐश्वर्यम् (ईश्वर+ष्यञ्) एव तिमिरं तेन अन्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्यः- चन्दनादि शीतलोपचारो से भी न दूर होने वाली, न शिशिरैः उपचारैः हार्यः (हृ+ण्यत्)। दर्पदाहज्वरोष्मा- अहङ्काररूप दाहक ज्वर की गर्मी, दर्प एव दाहज्वरः तस्य ऊष्मा। सततम्- निरन्तर। अमूलमन्त्रगम्यः- जडीबूटी एवं मन्त्रों के प्रयोग से भी न दूर होने वाली, न मूलैः मन्त्रैश्च गम्यः। विषयविषास्वादमोहः- विषय (शब्दस्पर्शादि) रूपी विष के सेवन से उत्पन्न मोह (मूर्च्छा), विषयाः एव विषं तस्या स्वादेन मोहः (मुह्+घञ्) घञि च भावकरणयोः' नियम से। अस्नानशौचवध्यः- निरन्तर स्नान और शौच से भी न धुलने वाला, स्नानं च शौचं च स्नानशौचम् तेन न वध्यः (वध+ण्यत्)। रागमलावलेपः-विषयासक्तिरूपी मल (गन्दगी) का लेप, रागः एव मलं तस्य अवलेपः (षष्ठीतत्पुरुष समास)। अक्षपावसानप्रबोधा- रात्रि की समाप्ति पर भी न समाप्त होने वाली निद्रा, न क्षपाया अवसाने प्रबोधा यस्या सा, (प्र+बुध्+घय्) घोरा- गहरी, गहन,

राज्यसुखसन्निपातनिद्रा- राज्य सुखरूपी सान्निपातिक निद्रा, राज्यसुखसन्निपाता सा एव निद्रा। सन्निपातः- एकत्र होना, संघात। इति- इस कारण से 'इति' शब्द का यहाँ हेतु अर्थ में प्रयोग हुआ है- 'इतशब्दः स्मृतौ हेतौ प्रकारादिसमाप्तिषु' (हलायुधकोश)। विस्तरेण- विस्तारपूर्वक अभिधीयसे- तुमसे कहा जा रहा है, अभि+धा, कर्मवाच्य, लट्लकार, मध्यम पु० एक०। गर्भेश्वरत्वम् गर्भ में रहने के समय से ही, गर्भाद् एव ईश्वरः गर्भेश्वरः तस्य भावः 'भावे त्वतलौ' अभिनवयौवनत्वम्- नवयौवन अभिनवं यौवनं यस्य सः अभिनवयौवनः तस्य भावः। अप्रतिमरूपत्वम्-अनुपम सौन्दर्य वाला होना, अप्रतिमं रूपं यस्य सः (बहुव्रीहि समास) तस्य भावः। अमानुषशक्तित्वम्-अलौकिकशक्ति से युक्त होना, न मानुषी इति अमानुषी (नञ् तत्पुरुष) अमानुषी शक्तिः यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्य भावः। अनर्थपरम्परा- अनिष्टकारीपरम्परा या शृङ्खला, अनर्थानां परम्परा (षष्ठी तत्पुरुष) एषां- इन पूर्वोक्त में से, यहाँ यतश्चनिर्धारणम्' से षष्ठी हुई है। एकैकं- प्रत्येक, एक-एक, यहाँ 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व हुआ है। अविनयानां- दुर्गुणों, दुराचारों का। आयतनम्- घर या स्थान है। किमुत- क्या कहना? यहाँ 'किम्' सर्वनाम के साथ उत निपात का प्रयोग हुआ है। समवायः- समूह, समुदाय, सङ्घात। अर्थात् जहाँ इनका समुदाय हो; वहाँ क्या कहना।

विशेष- 1 इस गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने मन्त्री शुकनास के उपदेश के बहाने एक लौकिक सत्य को उद्घाटित किया है। जिसका आशय यह है कि जन्म से प्राप्त प्रभुत्व, नवयौवन, अलौकिक शक्ति सम्पन्नता व्यक्ति में अहङ्कार उत्पन्न करते है। जैसा कि विष्णुशर्मा ने पञ्चतंत्र में कहा है- "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किं पुनस्तच्चतुष्टयम्।"

3. शुकनासोपदेश- यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालमनिर्मलापि कालुष्य-मुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाणि आस्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

संस्कृत व्याख्या- इदानीं यौवनस्य दुर्बुद्धिजनकत्वं प्रदर्शयन् कविराह- यौवनारम्भे- तारुण्यकालप्रारम्भे प्रायो बाहुल्येनाशास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि शास्त्रमेव

जलं पानीयं तेन प्रक्षालनेन निर्मला निर्गतो मलोऽबाधो यस्या एवं भूता अपि बुद्धिः कालुष्यं- वैपरीत्यम् उपयाति- प्राप्नोति। अनुज्झितधवलतापि-अनुज्झिता- अपरित्यक्ता धवलता- श्वेतिमा यया एवं विधापि यूनां-तरुणानां दृष्टिः। सरागैव- रागेण सह वर्तमाना एव भवति। आत्मेच्छया- स्वेच्छया यौवनसमये- तारुण्यकाले, प्रकृतिः- स्वभावः, पुरुषं दूरं अपहरति-अपहरणं करोति स्वाधीना करोति वा। अस्मिन्नर्थे उपमानं प्रस्तौति- शुष्कपत्रं वात्येव च वातानां समूहो वात्या वातकलिकोच्यते। अर्थात् यथा वात्या शुष्कपत्रम् अपहरति तथैव प्रकृतिः पुरुषमपहरति यौवनकाले। समुद्भूतरजोभ्रान्तिः- समुद्भूता रजोगुणेन भ्रान्तिःभ्रमो यस्याम्। पक्षे रजसां- रेणूनां भ्रमो यस्याम्। इन्द्रियहरिणहारिणी- इन्द्रियाणि- करणानि एव हरिणाः कुरङ्गाः तेषां हारिणी- हरणशीला एतादृशी उपभोगोऽङ्गनादिकः स एव मृगतृष्णिकामृगमरीचिका, इयं सततं- निरन्तरम्। अर्थात् सुखाभिमानोत्पादनात् दुरन्ता-दुखावसाना। नवयौवनकषायितात्मनश्च- नवयौवनेन- नवतारुण्येन कषायितं- विपरिवर्तितम् आत्मा- अन्तःकरणं यस्यैवंभूतस्य पुरुषस्य आस्वाद्यमानानि तान्येव विषयस्वरूपाणि मनसः चेतसो मधुरतराणि आपतन्ति, मधुराणि एव भवन्ति इत्यर्थः। अत्रैव दृष्टान्तमाह- सलिलानि इव अर्थात् यथा कषायद्रव्येण हरीतक्यादिना मधुराण्यपि जलानि मधुरातराणि स्युः। तथैव रमण्यादि भोगविषयाः 'आपाततोऽतिमधुरा भवन्ति' इत्याशय अत्र। विषयेषु-स्रक्चन्दनादिषु अत्यासङ्गो- अत्यासक्तिः पुरुषमात्मानं नाशयति। दिङ्मोहो- दिग्भ्रान्तिरिव। उभयोः सादृशयम् आह- उन्मार्गप्रवर्तकः- उन्मार्गो- अपथो विरुद्धाचारश्च तत्र प्रवर्तकः- प्रेरकः।

हिन्दी अनुवाद- और युवावस्था के प्रारम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल बुद्धि भी प्रायः मलिनता को प्राप्त हो जाती है। धवलता (श्वेतिमा) को न छोड़ते हुए भी युवकों की दृष्टि अनुरागयुक्त ही हो जाती है। जैसे वायु समूह सूखे पत्ते को बहुत दूर ले जाता है, वैसे ही यौवनकाल में रजोगुण के कारण भ्रमित स्वभाव वाले पुरुष की प्रकृति अपनी इच्छा से उसे दूर खीच ले जाती है। 'इन्द्रियरूपी' हिरणों का हरने वाली (दूर तक ले जाने वाली) यह विषय बोगरूपी मृगतृष्णा सदैव दुष्परिणाम देने वाली है। नवयौवन के कारण कषायित (रागद्वेष से युक्त) अन्तःकरण वाले व्यक्ति के मन को उन्ही भोगे जाने वाले विषयों का स्वरूप जल की भाँति अधिक मीठा प्रतीत होता है। विपरीत मार्ग में प्रवृत्त करने वाले दिग्भ्रम की भाँति कुमार्ग में प्रवृत्त करने वाले विषयों के

प्रति अत्यधिक आसक्ति पुरुष को नष्ट कर देती है।

पदार्थमीमांसा- यौवनारम्भे- युवावस्था के प्रारम्भ में, यौवनस्यआरम्भे (षष्ठी तत्पुरुष), प्रायः- अधिकांशतः। शास्त्रजलप्रक्षाननिर्मलापि- शास्त्र रूपी जल से प्रक्षालन के कारण निर्मल, शास्त्रमेव जलं तेन प्रक्षालनेन निर्मला (तृतीया तत्पुरुष)। कालुष्यम्- कलुषता को, कलुष+भावेष्यञ्)। उपयाति- प्राप्त करती है, उपा या+लट् (ति) प्र० पु० एकवचन।

अनुज्झितधवलतां- उज्ज्वलता को न छोड़ने वाला, न उज्झिता अनुज्झिता धवलता यया सा (नञ् तत्पुरुष)। सरागा- अनुराग से युक्त, रागेण सहिता। समुद्भूतरजोभ्रान्तिः- उठी हुई धूल या रजोगुण के दिशाभ्रम को वायुपक्ष में- समुद्भूता रजसां भ्रान्तिः यस्यां सा। प्रकृतिः- स्वभाव (प्र+कृञ्+क्तिन्) 'स्त्रियां भावेऽक्तिन्' नियम से। प्रकर्षेण करोतीति प्रकृतिः। आत्मेच्छया- स्वयं की इच्छा से, आत्मनः इच्छया। अतिदूरम्- अत्यन्तदूर, यहाँ 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इस नियम से द्वितीया हुई है। अपहरति- दूर ले जाती है, अपहरण कर लेती है (अप्+हृ+लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन)। इन्द्रियहरिणहारिणी- इन्द्रिय रूपी हिरणों को हर लेने वाली, इन्द्रियाणि एव हरिणा तान् हरन्तीति। "ताच्छील्येणिनि"। अपभोगमृगतृष्णिका- विषयभोगरूपी मृगतृष्णा। सततदुरन्ता- सदैव कठिनाई से समाप्त होने वाली, दुखपूर्णम् अन्तः यस्याः सा दुरन्ता, सततं दुरन्ता। नवयौवनकषायितात्मनः- नवयौवन के कारण कषायित आत्मा वाले, नवयौवनेन कषायितः आत्मा यस्य सः। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। आस्वाद्यमानानि- आस्वादित किये जाते हुए (आङ्+स्वद्+यक्+मुक्+शान चे) 'आने मुक्' से। विषयस्वरूपाणि- विषयों के स्वरूप, विषयाणां स्वरूपाणि (षष्ठी तत्पुरुष), मधुरतराणि- अत्यधिक मधुर, अतिशयेन मधुराणि (मधुर+तरप्) 'द्विवचनँविभज्योतरपदेतरबीयसुनौ" से। आपतन्ति- प्रतीत होते है, (आङ्+पत्+लट्लकार प्रथम पु; बहुवचन) उन्मार्गप्रवर्तकः- कुमार्ग या गलत मार्ग पर ले जाने वाला, उन्मार्गे प्रवर्तकः (प्र+वृत्+णिच् (इ)+ण्वुल्) विषयेषु- विषय वासनाओं में, अत्यासङ्गः- अत्यधिक आसक्ति या लगाव (अति+आ+सञ्ज+घञ्), नाशयति- विनष्ट कर देती है।

विशेष-

1. इस गद्य खण्ड में कवि ने युवावस्था में होने वाले दोषों से सचेत रहने का मार्ग बताया है।

2. यहाँ 'शास्त्रजलं' में रूपकलङ्कार है 'निर्मलापि कालुष्यम् उपयाति बुद्धिं में विरोधाभास अलङ्कार है। इसी प्रकार अपहरति का सौन्दर्य दर्शनीय है। उपमा का लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार दिया है- "साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक उपमाद्वयोः।"

शुकनासोपदेश- भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणम् आननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति। हरत्यतिमलिनमन्धकारानिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव। गुरूपदेशप्रशमहेतुर्वयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालमलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणमयति।

संस्कृत व्याख्या- विषयेषु अत्यासङ्गात् किम् फलम् एतदाशयं मनसीकृत्य कविराह- भवादृशाः भवत्सदृशाः एव उपदेशानां- शिक्षाणां, भाजनानि- पात्राणि भवन्ति नान्यः इति आशयोऽत्र। इदानीं पूर्वोक्त उपदेशस्य किं प्रयोजनं इति स्पष्टयति यतोहि अपगतमले- अपगतो- दूरीभूतः मलः- कालुष्यलक्षणो मलो यस्माद् एवं भूते मनसि- चित्ते उपदेशगुणाः- शिक्षागुणाः सुखेन- अनायासेन विशन्ति- प्रवेशं कुर्वन्ति, स्फटिकमणौ- स्फटिकश्चासौ मणिः तस्मिन् रजनिकरस्य चन्द्रस्यगभस्तयः- किरणाः यथा तद्वद् इवा अन्यथा दोषे सति किं स्यादिति आह गुरुवचनम्- गुरोः हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा गुरोः वचनं वाक्यम् अमलमपि- अलमं- निर्मलमपि, कल्याणकरमपि सलिलमिव- जलमिव, अभव्यस्य- अशिष्टजनस्य श्रवणस्थितं- श्रोत्रपथे गतं सन् महद् शूलं- वेदनाम् उपजनयति- उत्पादयति। अर्थात् यथा अतिस्वच्छमपि श्रोत्रगतं महती पीडामुत्पादयति तथैव अशिष्टजनस्य श्रवणपथे अमलमपि गुरुवचनं कर्णशूलमिति उपजनयति इत्याशयः। इतरस्य- अभव्येतर शिष्टजनस्य, तु गुरुवचनं दोषसमूहं करिणः- गजस्य, शङ्खाभरणं- शङ्खभूषणम् इव अधिकतरं अत्यधिकं आनन। शोभासमुदयम्- मुखशोभायाः समुदयम्- समूहम्, उपजनयति- उत्पादयति। अतिमलिनम्- अतिश्यामं दोषजातं- दोषाणां समूहम्, अन्धकारमिव- तिमिरम् इव, हरति-दूरीकरोति प्रदोषसमयनिशाकर इव- प्रदोषकाले उदित रात्रिरूपी यामिनीमुखे

तिलक इव- चन्द्रोदयः इव गाढश्याममपि अंधकारं यथा दूरीकरोति तथैव गुरुवचनं शिष्टजनस्य दोषसमूहं कामक्रोधादिसमूहं दूरीकृत्वा तस्याऽनस्य शोभां वर्धयति शङ्खाभूषणयुक्त हस्तिमुखमिव अधिकं शोभायमानं वर्तते इत्यर्थः। प्रशमहेतुः अन्तरिन्द्रियवृत्तीनां शान्तिहेतुः, गुरूपदेशः गुरूणां शिक्षावचनं शिरसिजजालं-शिरोरुहाणां भारं अमलीकुर्वन् स्वच्छं कुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति-परिपाकं नयति, वयःपरिणाम इव- अवस्था परिणाम इव पलितरूपेण वार्धक्यनिबन्धन शुक्लरूपेण इव परिपाकं नयति।

हिन्दी अनुवाद- आप जैसे (शिष्ट) व्यक्ति ही उपदेशों के (उपयुक्त) पात्र होते हैं। क्योंकि शुद्ध स्फुटिकमणि की भाँति निर्मल चित्त में उपदेशों के गुण सरलता से प्रवेश करते हैं। गुरु का उपदेशवचन निर्मल होता हुआ भी असज्जनों (दुर्जनों) के कान में पड़ने पर उसी प्रकार अत्यधिक पीड़ा देता है, जिस प्रकार निर्मल होता हुआ भी जल कान में पड़ने पर (अत्यन्त) पीडा देता है; किन्तु इसके विपरीत वही गुरुवचन सज्जन (शिष्ट) के कान में पड़ने पर मुख की शोभा के उदय में वैसे ही अभिवृद्धि कर देता है, जैसे शङ्खाभूषण हाथी के मुख की शोभा में वृद्धि कर देता है।

जिस प्रकार प्रदोषकालीन (रात्रि के आरंभ से पूर्व का संध्याकाल का) चन्द्रमा अत्यन्त कृष्णवर्ण (मलिन) अंधकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार गुरुपदेश अत्यन्त मलिन (कामक्रोधादि) दोष समूह को दूर कर देता है। (अन्तःकरण की वृत्तियों की) शान्ति का कारणभूत गुरूपदेश उसी (दोषसमूह) को निर्मल करता है, वैसे ही गुणरूप में बदल देता है, जैसे अवस्था (उम्र) का परिणाम (वृद्धावस्था) केश समूह को स्वच्छ करती हुई श्वेतरूप में परिणत कर देती है।

पदार्थमीमांसा- भवादृशाः- आप जैसे (निरासक्त और निर्मल चित्त वाले) व्यक्ति, 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्' च से यहाँ कञ् प्रत्यय हुआ है- भवत्+दृश+कञ्+प्रथमा, बहुवचन। भाजनानि-पात्र या अधिकारी। यहाँ विधेय के रूप में प्रयुक्त होने से नपुंसकलिङ्ग हुआ है; किन्तु भवादृशा का विशेषण होने से यहाँ बहुवचन का प्रयोग हुआ है। अपगतमले- मल के दूर हो जाने पर, (अप्+गम्+क्त) अपगतं मलं यस्मात् तस्मिन्। उपदेशगुणाः- उपदेश के गुण, उपदेशानांगुणाः। (ष० त०)

स्फटिकमणौ- स्फटिकमणि (बिल्लौरमणि) में, स्फटिकश्चासौमणिः

तस्मिनंर्मधारय समास। रजनिकरगभस्तयः- चन्द्रमा की किरणें, रजनीं करोतीति रजनिकरः तस्य गभस्तयः (षष्ठी तत्पुरुषसमास) सुखेन- आसानी से। विशन्ति-प्रवेश कर जाते हैं ('विश'प्रवेशने+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। अमलम्- निर्मल मलरहित, स्वच्छ, अविद्यमानं मलं यस्य तत् (नञ्बहुव्रीहिसमास)। सलिलम् इव- जल की भाँति। अभव्यस्य- अशिष्ट व्यक्ति के, भवतीति भव्यः (भू+यत्) न भयः इत अभव्यः तस्य। यहाँ 'भव्य गेय०' से यत् हुआ है। श्रवणस्थितम्- कानों में स्थित, श्रवणेस्थितम् (स्था+क्त)। इतरस्य- असज्जन से भिन्न अर्थात् शिष्टजन (सज्जन) को शूलम्- पीडा देने वाले। करिणः- हाथी के। शङ्खाभरणम्- शाङ्खाभूषण को, शङ्खानाम् आभरमम् (ष०त०)। आननशोभासमुदयम्- मुख की शोभा में वृद्धि को, आननस्य शोभा आननशोभा तस्या समुदयः तम् (षष्ठी तत्पुरुष), उपजनयति- उत्पन्न करता है, उप+जन्+णिच्+लट्लकार, प्र० पु० एक.। अतिमलिनमपि- बहुतगहन (अंधकारपक्ष में), अत्यधिक मलिन (दोषसमूह) पक्ष में। दोषजातम्- दोषसमूह (कामक्रोधादि) को, दोषाणां जातम्। प्रदोषसमयनिशाकरः- प्रदोषकालीन चंद्रमा, रात्रि के प्रारम्भकाल का चन्द्रमा, प्रदोषश्चासौ समयः तस्य निशाकरः। गुरुपदेशः- गुरु की शिक्षा, गुरोः उपदेशः (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रशमहेतुःअन्तःकरण की वृत्तियों के शान्ति का कारण, प्रशमस्य हेतुः (ष०त०)। अमलीकुर्वन्-निर्मल करता हुआ। अमलं कुर्वन् इति अमलीकुर्वन् (अमल+च्वि+कृ+शतृ 'सम्पद्यकर्तरिअभूव तद्भावे च्विः सूत्र से' वयः परिणामः। उम्र का ढलान्, वृद्धावस्था- वयसा परिणामः। शिरसिजजालम्- केशो के समूह को, शिरसिजानां जालम्। पलितरूपेण- श्वेतरूप में। परिणमयति- बदल देता है (परि+णमुप्रहणे+णिच्+लिट्)

विशेष-

1. इस गद्यखण्ड में व्यास जी ने गुरु की महिमा का वर्णन किया है। गुरु की महिमा का हमारे यहाँ बारम्बार गायी गया है।

   'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।' आदि उक्तियाँ इसमें प्रमाण है।

2. 'भवादृशा एव' से 'उपदेशानाम्' पर्यन्त वाक्य से राजकुमार चन्द्रापीड की विनम्रता प्रकट होती है।

3. यहाँ 'इव' उपमा का वाचक है। जिसका लक्षण करते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा

है- 'साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः'।

4. यहाँ प्रसादगुण है। जिसका लक्षण है- चित्तं व्याप्नोति क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः समस्तेषु रसेषु रचनासु च। स प्रसादः।

5. यहाँ पाञ्चालीरीति का प्रयोग हुआ है। जिस लक्षण 'शब्दार्थयोः समोगुम्फः पाञ्चाली- रीतिरिष्यते है।' (सरस्वतीकण्ठाभरण)

(4) शुकनासोपदेश- अयमेव चानास्वादितरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम् अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा? गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजात-पलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम् असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः।

संस्कृत व्याख्या- इदानीं उपदेशस्य किं प्रयोजनमस्ति इत्याशयेन कविराहअयमेव- नापरः ते तव उपदेशस्य कालः शिक्षा प्रदानस्य समयः। यतोहि अनास्वादितरसस्य- न आस्वादितः अनास्वादित- अनुभवविषयीकृतः विषयरसस्य येन तस्य तादृशस्य, तव अयमेव शिक्षाप्रदान काल अस्ति इत्यर्थः। आस्वादितरसस्य तु उपदेशो निरर्थकः स्याद् अतएव आह+कुसुमशरशरप्रहारंजर्जरिते- हि-यतोहि कुसुमशरस्य- कमादेवस्य शराणां बाणानां प्रहारेणअभिधातेन जर्जरिते- शिथिलीभूते हृदि उपदिष्टम्- उपदेशविषयीकृतं जलमिव- सलिलमिव गलति- क्षरति विनश्यति वा अर्थात् निरर्थकं भवति इत्याशयोऽत्र। पुनः दोषान्तरमाह- अकारणं च भवति अर्थात् तृष्णोपशमादिकार्यजनकं न भवति इत्याशयः। ननु कामदेवशरप्रहारेण जर्जरितहृदयस्य उपदेशाभावेऽपि प्रशमादिकम् उपदेशकार्यं वंशात्, शास्त्रभ्रवणाद् भविष्यति इत्याशयेन वदति- दुष्प्रकृतेः- दुरात्मनः हृदयः तस्य अन्वयः श्रुतं च अविनयस्य हेतोर्भवति। सुवंशस्य अविनये कथं प्रवृत्तिः भवति इत्याशयेन आह- चन्दनप्रभवो- चन्दनात्- मलयजात् प्रभवो उत्पत्तिः यस्य एवंभूतो अनलोऽग्निः किं न दहति न भस्मीकरोति। अर्थात् परस्परसंघर्षदोषो सति चन्दनात् समुत्थितोऽपि अग्निः दहत्येव-दाहमेव करोति। एवं प्रशमहेतुनापि वारिणां-किं वडवानलो- वाडवाग्निः तोयधेः प्रादुर्भावति, सर्वलोक

विनाशाय सदा महासमुद्रेतिष्ठति, यस्य वांडवामुख इति प्रसिद्धिः। न प्रचण्डतरी भवति- प्रवलतरो न भवति प्रकारात्तरेण गुरुवचनमाहात्म्यं वर्णयतिन् आह- गुरूपदेशश्च नाम हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टृणां गुरुणां उपदेशः- शिक्षा पुरुषाणांमानुषाणाम् अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्- अखिलः समग्रो यो मलः कालुष्यं तस्य प्रक्षालनं शुद्धीकरणं तत्र क्षमम्- समर्थम् अजलं- जलरहितं स्नानम्। अनुपजातम्- अनुत्पन्नम् पलितं- श्वेतं पाण्डुरो वा कचः तदादि वैरूप्यम् यस्मिन् तत् एतादृशम् अजरं- जरारहितम् वृद्धत्वम् वार्द्धक्यम् अनेन नारोपितः स्वीकृते मेदोदोषो येन एवंभूतं गुरुकरणम्स्थूलीभवनम्। यतोहि मेदोदोषेण स्थूलता भवति इति सर्वत्र प्रसिद्धम्। तथायं न भवति। असुवर्णविरचनग्राम्यं- न विद्यते सुवर्णस्य- कनकस्य विरचनं यस्मिन् एवं भूतम्। अग्राम्यं प्रशंसनीयं कर्णाभरणं- कर्णाभूषणणं भ्रवणविभूषणमव। अतीतज्योतिरालोकः- अतीतोअवगतो ज्योतिः प्रकाशो यस्माद् एवंभूत आलोकः- प्रकाशः। नोदेगकरः- न संतापजनकः प्रजागरः- जागरणम्।

हिन्दी अनुवाद- विषयभोगों के रस का आस्वाद (अनुभव) न किये हुए तुम्हारे लिये यही उपदेश का (उचित) समय है, क्योंकि कामिदेव के बाण के प्रहार से जर्जरित (बिंधे हुए) हृदय में उपदेश किया हुआ वाक्य जल की भाँति वह जाता (निरर्थक हो जाता) है। दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति का श्रेष्ठ कुल और श्रुतशास्त्र विनय का कारण नहीं होता (अर्थात् विनय नहीं उत्पन्न करता। (क्योंकि) क्या चन्दन से उत्पन्न अग्नि नहीं जलाती? अथवा क्या (सामान्य अग्नि को) बुझाने के कारणभूत जल से उत्पन्न वाडवाग्नि अधिक प्रचण्ड नहीं होती? गुरु का उपदेश तो पुरुषों के सभी मलों (कालुष्यों) के प्रक्षालन में समर्थ जलरहित स्नान (जैसा) है, जिससे श्वेत केशादि रूप की वैरूप्यता से रहित बुढ़ापे से रहित वृद्धत्व (प्राप्त होता) है। मेदोदोष (चर्बी के दोष) से रहित गुरुता (मोटापा) वाला है। स्वर्ण से निर्मित न होने पर भी ग्राम्यत्व (गँवारपन) से रहित कर्णाभूषण है। भौतिक ज्योति से रहित प्रकाश है और सन्ताप को न देने वाला जागरण जैसा है।

पदार्थमीमांसा- अनास्वादितविषयरसस्य- विषयभोगो के रस को न चखने वाले, न आस्वादितः विषयाणां रसः येनसः (आ+स्वाद्+क्त) तस्य, (तत्पुरुषगर्भक) (बहुव्रीहिगर्भ) उपदेशस्य- शिक्षा का (उप+दिश्+घञ्= उपदेशः तस्यः अयमेव कालः- उचित समय यही है। कुसुमशर प्रहारजर्जरिते- कामदेव के बाणों के प्रहार से बिंधे हुए

(जर्जरित), कुसुमानि एव शराः यस्य सः कुसुमशरः (बहुव्रीहिसमास) तस्य शराणां प्रहारेण जर्जरितः तस्मिन्। हृदि- हृदय में। उपदिष्टम्- उपदेश किया हुआ विषय (उप+दिश्+क्त)। जलमिव- जल की भाँति। गलति- नहीं टिकता अथवा बह जाता है (गल+लट्लकार प्र.पु. एकव. अन्वयः- वंश। श्रुतम् वा- अथवा विद्या (श्रुश्रवणे+क्त+नपुंसक. एकवचन) दुष्प्रकृतेः- दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति का, दुष्टा प्रकृतिः यस्य तस्य (दुस्+प्रकृ+क्तिन्) 'स्त्रियां भावे क्तिन्' सूत्र से। (विनयस्य- विनम्रता का। अकरणं भवति- कारण नहीं होता। चन्दनप्रभवः- चन्दन से उत्पन्नः चन्दनात् प्रभवः अनलः- अग्नि। किं न दहति- क्या नहीं जलाता। अर्थात् जलाता ही है। प्रशमहेतुना- बुझाने के कारण से, प्रशमस्य हेतुः (प्र+शम्+अ) तेन (षष्ठी तत्पुरुष। वारिणा- समुद्रजल से। वडवानलः- समुद्र की अग्नि, वडवायाः अनलः (षष्ठी तत्पुरुष)। न प्रचण्डतरीभवति- अधिक प्रचण्ड नहीं होती, यहाँ "सम्पद्यकर्तरि अभूत्तद्भावे च्विः" से च्वि (इ) प्रत्यय हुआ है।

गुरूपदेशः- गुरोः उपदेशः, गुरु की शिक्षा (षष्ठी तत्पुरुष समास)। नाम- निश्चय ही, यहाँ 'नाम' शब्द का प्रयोग निश्चय बताने के लिये किया गया है। अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्- समग्र मलों को धोने में समर्थः अखिलाश्च ये मलाः अखिलमलाः तेषां प्रक्षालने क्षमम्। अजलं- जल से रहित, अविद्यमानं जलं अजलम् (नञ् बहुव्रीहि)। अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्- जिसमे श्वेतकेशादि विरूपता उत्पन्न नहीं होती। पलितम् आदौ यस्य तत् पलितादि विरूपस्य भावः वैरुप्यम् (वि+रुप+भावेष्यञ्)। अजरम्-अविद्यमाना जरा यस्मिन् तत् (नञ् बहुव्रीहिसमासं)। अनारोपित मे दोक्षेपः श्वेतकेश मे आदि विरूपताओं से (अजरं- जरारहित)। न आरोपितः (आ+रुह+रुप+णिच्+क्तः मेदसः दोषः येन तत्। गुरुकरणं- गुरुता उत्पन्न करने वाला। (गुरु+च्वि+कृञ्+ल्युट्), आशय यह है कि सामान्यतः शरीर में चर्बी मोटापा बढ़ाती है। किन्तु गुरुपदेश प्राप्त व्यक्ति को गौरव प्राप्त होता है। असुवर्णविरचनं- जिसकी रचना स्वर्ण से नहीं हुई, न सुवर्णेन विरचना यस्य तत् (नञ्बहुव्रीहिसमास)। अग्राम्यं- गँवारपन से रहित, ग्रामेभवः ग्राम्यः (ग्राम+य) कर्णाभरणं- कानौ का आभूषण, कर्णयोः आभरणम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)। अतीतज्योतिः- अतीतं ज्योतिः यस्य सः (अति+इणगतौ+क्त)। आलोकः- प्रकाश नोद्वेगकरः- उद्वेग या सन्ताप न देने वाला। प्रजागरः- विशेष जागरण, प्रकृष्टः जागरः। अर्थात् लोक में सोते हुए को जगाने पर

सन्ताप होता है, किन्तु गुरु का उपदेश बिना संताप के जगाता है।

विशेष- इस गद्यांश में गुरु की अद्भुत महिमा का प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि गुरूपदेश अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाती है। जिसकी उपमा कवि ने अजलस्नान, अजरवृद्धत्व, अग्राम्य कर्णाभूषणता एवं अनुद्वेगकारी जागरण से दी है। जैसा कि मनुस्मृतिकार ने भी कहा है-

'न तेन वृद्धोभवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः। (अ. 2/156)

2. इस गद्यांश से स्पष्ट होता है कि स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता-

"अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्धिन वर्तते। स्वभावोदुरतिक्रमः।" आदि उक्तियाँ इसमें प्रमाण हैं।

3. गुरु के उपदेश की तुलना ऐसे प्रकाश से की गयी है, जो अज्ञान के अंधकार को दूरकर ज्ञान की ज्योति आलोकित करता है।

शुकनसोपदेश- विशेषेण विशेषरू से। राज्ञाम् राजाओं को विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनोभयात्। उद्दामदर्पाश्च पृथुस्थमितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेन अवधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्। अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राज्यलक्ष्मीः।

संस्कृतव्याख्या- पूर्वोक्त अजलस्नानादयो गुरूपदेशगुणाः राज्ञां भूभृतां विशेषेण-आधिक्येन उपकारिण इत्याशयः अतएवाह- राज्ञाम् अनेक उपदेष्टारः किं पुनः तवोपदेशेन इत्यस्मात् कारणादाह- विरला हि तेषां भूभृताम् उपदेष्टारः। यतो हि तेषां उपदेशदातारः विरला एव अस्ति। कारणं वदति एतस्य- प्रतिशब्दक- प्रतिध्वनिरिव जनो-लोकः भयात्-त्रसाद् राजवचनम्- नृपाणां वचः अनुगच्छति- अनुसरति। अतएव राज्ञामुपदेशदातारः विरलाः स्तोका वा। उद्दाम-उत्कटो दर्पोऽहङ्कारों येषां ते उद्दामदर्पाः-परमाहङ्कारिणाः पृथुयथा स्यात्तथा स्थगितानि- आच्छादितानि श्रवणविवराणि- कर्णकुहराणि येषां ते च न शृण्वन्ति- आकर्णयन्ति अर्थात् कदाचित्

शृण्वन्तोऽपि- आकर्णयन्तोऽपि गजो हस्ती तस्य यन्निमीलितं नेत्रसङ्कोचः तद्वत् निमीलितेन अवधीरयन्तोऽनादरं कुर्वन्ति हितोपदेशदायिनः- हितपूर्णोपदेशदातारः गुरून्- खेदयन्ति-क्लेशयन्ति। इदानीं नृपस्वभावं प्रादर्शयन् आह- राजप्रकृतिः- राज्ञां स्वभावो हि विह्वला- व्याकुला अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता- अहङ्कार एव दाहज्वर- तीव्रतापः तत्कारणाद् या मूर्च्छा- मोहः भवति तयान्धकारिता इवाचरिता। धनराजलक्ष्म्याः स्वरूपं प्रादर्शयन्नाह- अलीकाभिमानोन्मादकारी- अलीकऽवास्तवो एवंविधानि धनानि द्रव्याणि राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा- राज्यमेव विषं गरलं तस्माद् यो विकारो विकृतिः तेन कृत्वा यत् तन्द्रा- आलस्यं तत् प्रदा राज्यलक्ष्मीः- राज्यश्रीः।।

हिन्दी अनुवाद- विशेष रूप से राजाओं के लिये (यह उपदेश निश्चित रूप से आवश्यक है)। क्योंकि उनको उपदेश देने वाले विरले ही होते हैं। सब लोग भय के कारण प्रतिध्वनि की भाँति राजाओं के वचन (आज्ञा) का अनुसरण करते हैं। उत्कट दर्प वाले (अभिमानी), अत्यधिक रुँधे हुए कर्णकुहर वाले वे (राजा) उपदेश किये जाने पर भी उसके वचन को (हितकर वचन को) नहीं सुनते। और सुनते हुए भी हाथी के समान आँख बन्द करके (उसकी) अवहेलना (निरादर) करते हुए हितकर उपदेश देने वाले गुरुओं को दुख देते हैं। राजा का स्वभाव अहङ्काररूपी दाहज्वर से उत्पन्न मूर्च्छा (मोह या अज्ञान) के कारण अंधकार युक्त रहता है अतएव विह्वल सा रहता है। धन सम्पत्ति मिथ्या अभिमान और उन्माद को उत्पन्न करती है। राज्यलक्ष्मी राज्यरूपी विष के विकार से उत्पन्न तन्द्रा (आलस्य) देती है।

पदार्थमीमांसा- विशेषेण- विशेषरूप से। राज्ञाम्- राजाओ को हि- क्योंकि तेषां- उन राजाओं को। उपदेष्टारः- उपदेश देने वाले, (उप+दिश+तृच्,) प्रथमा, बहुवचन। विरलाः- अल्पसंख्या वाले। प्रतिशब्दकः- प्रतिध्वनि, प्रतिगतः शब्दः प्रतिशब्दः स एव प्रतिशब्दकः यहाँ स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय हुआ है। 'कुगति प्रादयः से प्रादितत्पुरुष। जनः- लोग, यहाँ समूह अर्थ में एकवचन हुआ है। राजवचनम्- राजाज्ञा को, राज्ञः वचनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)। अनुगच्छति- अनुगमन करता है। (अनु+गम्+लट्लकार, प्रथमपु, एकवचन) उद्दामदर्पाः- उत्कट दर्पवाले, उद्दामः दर्पोऽहङ्कारो येषां ते (बहुव्रीहिसमास)।

पृथुस्थगितश्रवणविवराः- अत्यधिक रुँधे हुए कर्णछिद्रवाले, पृथुस्थगितानि श्रवणविवराणि येषां ते (बहु.समास)। उपदिश्यमानमपि- उपदेश किये जाने पर भी, (उप+दिश्+यक्+शान) यहाँ 'आने मुक्' मुगागम हुआ है। न शृण्वन्ति- नहीं सुनते हैं।

(श्रुश्रवणे+श्रु+शतृ) गजनिमीलितेन- हाथी के अक्षिनिमीलन की भाँति। अवधीरयन्तः- अवहेलना करते हुए (अव+धी+शतृ+प्र. बहुवचन) (हितोपदेशदायिनः- हितकारी उपदेश देने वालों को, हितपूर्णः उपदेशः- हितोपदेश, तं ददाति इति हितोपदेशदायिनः, तान्। खेदयन्ति- कष्ट पहुँचाते हैं। (खिद्+णिच्+लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन)। अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता- अहङ्कार रूपी दाहज्वर से उत्पन्न मूर्च्छा से अन्धकारयुक्त, अहङ्कार एव दाहज्वरः तद् हेतुका या मूर्च्छा तथा। अन्धकारिता अंधकार इव आचरिता (उपमानादाचारे) से समास हुआ है। अलीकाभिमानोन्मादकारी- मिथ्या अभिमान और उन्माद उत्पन्न करने वाला, अभिमानश्चोन्माश्च अभिमानोन्मादौ (इतरेतरद्वंद्व) अलीकौ अभिमानोन्मादौ कुर्वन्ति। राज्यलक्ष्मी- राजलक्ष्मीः। राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा- राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न होने वाली तन्द्रा (आलास्य) प्रदान करने वाली, राज्यमेव विषं तेन विकारेण उत्पन्ना तन्द्रा तां प्रकर्षेण ददाति इति।

विशेष- 1. इस गद्यांश में कवि ने राजाओं के स्वभाव को वर्णन करते हुए उसे सावधान रहने की शिक्षा दी है। क्योंकि ऐश्वर्य के मद में चूर ये लोग हितोपदेशकारी गुरुओं का भी अपमान करते हैं।

2. यहाँ 'प्रतिशब्दक इव' में 'इव' उपमावाचक है- 'साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैव उपमाद्वर्यो, 'विकारतन्द्राप्रदा' में रूपक अलङ्कार है। जिसका लक्षण है- 'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।'(काव्यप्रकाश)

शुकनासोपदेश- आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः, क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता। न हि एवम्विधमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुखेन परिपाल्यते। दृढगुणसंदाननिष्पंदीकृतापि यथेयमनार्या।

संस्कृत व्याख्या- पूर्वोक्तकथने कविः परिपुष्टिं ददत् आह- कल्याणे- मङ्गले अभिनिवेशी- आग्रहयुतो भवान् प्रथमम्- आदौ लक्ष्मी श्रियम् एव तावत् आलोकयतु- विचारयतु। इदानीम् लक्ष्मीर्दोषमाह- हि- यतोहि, इयं- प्रत्यक्षोपलभ्य माना खडगानाम् –

असीनां यन्मण्डलं समूहःसघातों वा तदेव कृष्णत्वसाम्यात् भ्रमरी- मधुकरी- लक्ष्मीः। पुनः दोषान्तरम् आह- क्षीरसागरात्- दुग्धाम्बुधेः उद्गता तद्मन्थनसमये निर्गता पारिजातपल्लवेभ्यः- पारिजात- कल्पद्रुम इत्याख्यः वृक्षस्य पल्लवात् रागम्- रक्तिमा अनुरागं वा, इन्दुशकलाद्- चन्द्रखण्डात् एकान्तवक्रताम्- कुटिलताम् प्रतिकूल्यं वा, उच्चैःश्रवसं उच्चैःश्रवाइत्याख्यात् अश्वात् चञ्चलताम्- चारचल्पै कालकूटात्- कालकूट इत्याख्य विषात् मोहनशक्तिम्- मूच्छोंत्पादक शक्तिम् सामर्थ्यं वा, मदिरायाः- वारुण्याः मदम्- उन्मादकत्वम्, कौस्तुभ इत्याख्य मणेः नैष्ठुर्यम्- निर्दयत्वम् काठिन्यं वा इत्येतानि सर्वाणि सहवासपरिचयात्- एकत्रवस्थानप्रणयवशात्, विरहविनोदचिह्नानि- विरहस्थपारिजातादिभिः विश्लेषस्य विनोदचिह्नानि अपनोदन चिह्नभूतानि, गृहीत्वैव, ग्रहणं कृत्वा एव उद्गता- उत्थिता। इह जगति- अस्मिन् संसारे- एवं विधम्- एतादृशम् अपरिचितम्- प्रेमनिरपेक्षं किचित्- अन्यं नास्ति यथा इयमनार्या येन प्रकारेण इयम् अनार्या- नीचस्वभावा दुष्टा वा। लब्धापि- महता क्लेशेन प्राप्ता अपि खलु निश्चयेन दुःखेन- क्लेशेन परिपाल्यते- परिपालनविषयी- क्रियते। दृढ़गुणसन्दाननिष्पंदीकृतापि- दृढ़ा- दृढीकृता गुणाः सन्धिविग्रहादिगुणाः तेन संदानेन- बंधनेन निष्पंदीकृतापि- निश्चेष्टीकृतापि नश्यति- परत्रगमनाद् दर्शनाभावं गच्छति।

हिन्दी अनुवाद- लोक कल्याण में अभिनिवेश (प्रयत्नशील) रखने वाले (आप) सर्वप्रथम लक्ष्मी को ही देखिये। (कुशल योद्धाओं के कृपाणसमूह रूपी कमलवन में विश्राम करने वाली भ्रमरी (स्वरूप) यह लक्ष्मी सहवासपरिचय के कारण पारिजात के पल्लवों से राग (लालिमा आसक्ति), चन्द्रलेखा से नितान्त वक्रता (कुटिलता), उच्चैःश्रवा से चञ्चलता, कालकूट विष से सम्मोहनशक्ति (मूच्छोंशक्ति), मदिरा से मद (अभिमान या नशा), कौस्तुभमणि से निष्ठुरता (कठोरता या निर्दयता), इन विरहविनोद के चिह्नों को (लेकर ही) क्षीरसागर से निकली है। इस संसार में इस प्रकार का अपरिचित (परिचय न स्वीकार करने वाली) कोई दूसरा नहीं है, जैसी कि यह अनार्या (दुष्टा) लक्ष्मी है। (क्योंकि) प्राप्त होने पर भी यह दुखपूर्वक (कठिनाई से) रखी जाती है। सुदृढ गुणों (शौर्यादि गुणों या रज्जुओं) के बन्धन से निश्चल की जाने पर भी नष्ट हो जाती है (अर्थात् खुल जाती है)।

पदार्थमीमांसा- कल्याणभिनिवेशी- कल्याण या मङ्गल करने के इच्छुक (आप), कल्याणे अभिनिवेशः (अभि+नि+विश्+घञ्+इ,यस्य सः (बहुव्रीहि समास)। यहाँ

'ताच्छील्येणिनि' से णिनि (इ) प्रत्यय हुआ है। प्रथमम्- पहले, क्रिया विशेषण नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन। आलोकयतु- देखिए (आ+लोक्+लोट्+प्र.पु. एकवचन। तावत्- तब तक अथवा और विचार करने से पूर्व। अव्यय होने से यह अनेकार्थक है। यहाँ इसका प्रयोग कथन में बल देने के लिये हुआ है। हि- क्योंकि। इयम्- यह अर्थात् वस्तुतः यह। सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी- श्रेष्ठ योद्धाओं के खड्गसमूह रूपी कमल वन में आश्रय लेने वाली भ्रमरीरूपा (लक्ष्मी), सुभटानां खड्गमण्डल एव उत्पलवनं तस्मिन् विश्रमः यस्याः सा भ्रमरी (बहुव्रीहि समास)। सहवासपरिचयवशात्- सहवास परिचय के कारण सहवासेन परिचय: सहवासपरिचयः तस्य वशात् (तृतीया तत्पुरुष)। पारिजातपल्लवेभ्यः- पारिजात के पत्तों से, पारिजातस्य पल्लवेभ्यः (षष्ठी तत्पुरुष)। रागम्- लालिमा को, अनुराग को, (रञ्ज्+धञ्, प्र. एक.) इन्दुशकलात्- चन्द्रलेखा अथवा चन्द्रमण्डल से, इन्दोः शकलात् (षष्ठी तत्पुरुष)। एकान्तवक्रताम्- नितान्त वक्रता या टेढ़ापन या नितान्तकुटिलता (लक्ष्मी पक्ष)। उच्चैः श्रवसः- उच्चैः- श्रवा नामक इन्द्र के घोड़े से, उच्चैः श्रवसो यस्य तस्मात् (बहुव्रीहिं समास)। चञ्चलताम्- चञ्चलता (अश्वपक्ष), अस्थिरता (लक्ष्मीपक्ष) को। कालकूटात्- कालकूट नामक विष से। मोहनशक्तिम्- मूर्च्छित करने की शक्ति (विषपक्ष), वशीकरणशक्ति (लक्ष्मीपक्ष), मदिरायाः- शराब से। मदम्- नशा (सुरापक्ष), अभिमान या अहङ्कार (लक्ष्मीपक्ष), कौस्तुभमणेः- कौस्तुभमणि से। नैष्ठुर्यम्- कठोरता मणिवक्ष निर्दयता लक्ष्मीपक्ष), निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यम् यहाँ 'भावेष्यञ्' से 'ष्यञ्' प्रत्यय हुआ है। विरहविनोदचिह्नानि- विरहविनोद अर्थात् विरह के दुख को दूर करने के लिये (सहवासियो के प्रतीक) चिह्नों को। गृहीत्वा- लेकर (ग्रह+क्त्वा)। उद्गता- उत्पन्न हुई है (उद्+गम+क्त+टाप्)। इह जगति- इस लोक में। एवं विधम्- इस प्रकार का। अपरिचितम्- परिचय न रखने वाला। किञ्चित्- कोई भी, यथा इयम्- जैसे यह (लक्ष्मी)। यथा शब्द का प्रयोग वाक्य में यद्यपि क्रियाविशेषण के रूप में होता है, तथापि यहाँ यह इतरेतर सम्बन्ध दर्शाने के लिये हुआ है। अतः यहाँ 'यथा' का प्रयोग या दृश अर्थ में हुआ है। अनार्या- नीच या दुष्टा (लक्ष्मी)। यहाँ आचार का पालन न करने के कारण लक्ष्मी को अनार्या कहा गया है। लब्धापि- प्राप्त होने पर भी, (लभ्+क्त+टाप्)। खलु- वास्तव में। दुखेन- दुख से, कठिनाई से। परिपाल्यते- रखी जाती है या सुरक्षित की जाती है। दृढ़गुणसन्दाननिष्पंदीकृता- सुदृढ़ गुणों के बन्धन से अथवा शौर्यादि गुणों से निश्चल की

गयी, गुणानां सन्दानम् (सम् दो+ल्युट् (अन) दृढं च तत् गुणसन्दानम् तेन निष्पंदीकृता (तृ. तत्पुरुष)। नश्यति- नष्ट हो जाती है (नश्+लट्लकार, प्र.पु. एकवचन।

विशेष- इस गद्यखण्ड में लक्ष्मी के स्वभाव एवं उसके अवगुणों की चर्चा करते हुए कारण बताया गया है।

2. यहाँ देवासुर द्वारा समुद्रमन्थन करके निकाले गये चौदह रत्नों के साथ लक्ष्मी के भी निकलने के कारण उसके स्वभावगत गुणों के हेतु को दर्शाया गया है। जैसी कि उक्ति है-

'लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुराधन्वन्तरिश्चन्द्रमा।

गावो कामदुधा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।।

अश्वः सप्तमुखो विषहरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधेः।

रत्नानीह चतुर्दशकुर्युः सदा मङ्गलम्।।

3. उपर्युक्त गद्यांश में राग वक्रता, मदमोहनशक्ति, नैष्ठुर्य आदि पदों में श्लेष होने से ये द्वयर्थक है। जिसका लक्षण है- 'श्लिष्टैः' पदैरनेकार्थाविधाने श्लेष इष्यते। (साहित्यदर्पण)

शुकनासोपदेश- उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपलितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनी संचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेन न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेभ- परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशेऽपि कविः लक्ष्म्याः दोषानां वर्णयति- उद्दामेति उत्कटो दर्पोऽहङ्कारो येषां एवं भूता ये भटाः शूरवीराः तेषां सहस्रं तेन उल्लासिता

ऊर्ध्वीकृता या असिलतास्ता एव पञ्जरं तत्र विधृतापि स्थापिता अपि अपक्रामति अपसरति पक्षान्तरं समाश्रयति। मदजलेति- मदजलं- दानवारि तदेव श्यामत्व साधर्म्यात् दुर्दिनान्धकारः तद् युक्ताः ये गजाः- करिणः तैः घटिता- निष्पादिता या घनाः मेघसमूहः तेन परिपालिता- रक्षिता अपि लक्ष्मीः प्रपलायते- पलायनं करोति। न परिचयं-संस्तवं रक्षति पालयति। अभिजनं- कुलं न ईक्षते-न अवलोकयति। रूपं-सौन्दर्यं न आलोकयते- न अवलोकयति। कुलक्रमं- वंशपरम्परां न अनुवर्तते- न अनुगच्छति। शीलम् -आचारं न पश्यति- नावलोकयति। वैदग्ध्यं- पाण्डित्यं न गणयति- गणनां न करोति। श्रुतं- शास्त्रं न आकर्णयति- न शृणोति। धर्मं- सुकृतं न अनुरुध्यते- धर्मानुरोधेन एव न प्रवर्तते, अधर्मवतामपि गृहे तददर्शनात्। त्यागं- दानं न आद्रियते- आदरं न करोति कृपणग्रहेऽपिदर्शनात्,विशेषज्ञतां- विशेषेण सर्वार्थवेदितां न विचारयति- विचारणां न करोति। आचारं- सदाचारं न पालयति- न रक्षयति। सत्यं- अवितथं न अनुबुध्यते- न जानाति असत्यतोऽपि गृहे बाहुल्यात् दर्शनात्। लक्षणं- ध्वजवज्रांकुशादि सामुद्रिकशास्त्रे प्रतिपादितं लक्षणं न प्रमाणीकरोति-प्रमाणं न मन्यते, यतोहि लक्षणसत्वेऽपि तस्या अभावदर्शनात्। गन्धर्वनगरलेखा देवयोनिविशेषाणां रात्रौ एव अवलोक्यमानं यन्नगरम् तत्पङ्क्तितः अथवा दृष्टिभ्रान्त्या आकाशे नगरवद् अवलोक्यमाना कापि रेखा सैव इयं लक्ष्मीः पश्यत् एव- अवलोकयत्येव नश्यति- विलयं प्रलयं वा गच्छति आरूढ- उत्पन्नो यो मन्दरपरिवर्तने- क्षीरदधिमथनसमये मेरुपर्वत घूर्णनेन जनितो यो आवर्तः-परिवर्तः-परिभ्रमः तज्जनितो यः आवर्तः- पयसां भ्रमः तस्माद् यो भ्रान्तिः- भ्रमिः तज्जनितः संस्काराख्यो वेगः यस्याः एवं विधैव परिभ्रमति परिभ्रमणं करोति अर्थात् गृहात्गृहं परिव्रजति। कमलिनी- पङ्कजेषु यत् लता ताभिः सञ्चरव्यतिरेकेण लक्ष्म्याः पङ्कजवने भ्रमणसम्पर्केण लग्नानि-पादौ संसिक्तानि यानि नलिनानां कमलिनीनां- नालकण्टकानि तैः क्षताः-विदीर्णपादेव लक्ष्मीः क्वचिदपि- कुत्रापि पदं-चरणं निर्भरं- निश्चलं न आबध्नाति- न विधत्ते। अति प्रत्यत्नेन- अतिप्रयासेन विधृता- स्थिरीकृता अपि इयं लक्ष्मीः परमेश्वरगृहे या विविधा- अनेकप्रकाराः ये गन्धगजाः- गन्धमय करिणः तेषां गण्डयोः कपोलयोः यानि मधूनि- मदजलवारीणि एव मधूनि मद्यानि, अतएव तेषां पानेन- आस्वादेन मत्ताः इव सती परिस्खलति- भ्रश्यति अर्थात् नृपान्तरं गच्छति। पारुष्यं नैष्ठुर्यं-कर्कशतां वा उपशिक्षितुमिव- अभ्यसतुमिव असिधारासु-खड्गधारासु निवसति- निवासं करोति।

हिन्दी अनुवाद- उत्कट अभियान वाले हजारों योद्धाओं के द्वारा उठायी गयी खड्गलता रूपी पिञ्जरें में स्थापित की जाने पर भी यह लक्ष्मी दूर चली जाती है। मदजलकी वर्षारूपी अन्धकार से युक्त हाथियों के समूह रूपी मेघमाला से संरक्षित की जाने पर भी (यह लक्ष्मी) पलायन कर जाती है। यह न परिचय की रक्षा करती है। न शास्त्र को सुनती है। न धर्म का अनुसरण करती है। न त्याग का आदर करती है। न विशेषज्ञता का विचार करती है। न आचार का पालन करती है। न सत्य को समझती है। (और) न ही (शरीरगत) लक्षण को प्रमाण मानती है। गन्धर्वनगरलेखा की भाँति (यह लक्ष्मी) देखते-देखते ही नष्ट हो जाती है। आज भी मानो (समुद्र मन्थन के समय) मन्दराचल के घूमने से (समुद्र में) उत्पन्न भँवरो के चक्कर से उत्पन्न भ्रमिजनित संस्कार के कारण ही यह (लक्ष्मी) कहीं भी दृढ़तापूर्वक (पूर्णरूप से) पैर नहीं रखती। श्रेष्ठ राजाओं के घरों में अत्यन्त प्रयत्न (प्रयास) से रखी जाने पर भी अनेक गन्धगजों के गण्डस्थल से झरते मदजल के पान से उन्मत्त की भाँति स्खलित हो जाती है। निष्ठुरता सीखने के लिये मानों तलवार की धार में निवास करती है।

पदार्थमीमांसा- उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता- उत्कट अभिमानी सहस्रौं योद्धाओं के द्वारा उठायी गयी खड्गलतारूपी पिंजरे में स्थापित, उद्दामः दर्पो येषां ते उद्दामदर्पाः, (बहुव्रीहिसमास) उद्दामदर्पभटानां सहस्रं तेन उल्लासिता (उत्+लस+णिच्+क्त+टाप् (आ) या असिलता सा एव पञ्जरं तस्मिन् पञ्जरे विधृता (वि+धृ+क्त+टाप्)। अपक्रामति- दूर चली जाती है, निकल जाती है (अप+क्रमु+लट्लकार, प्र.पु. एकवचन)। अर्थात् सहस्रो योद्धाओ द्वारा युद्धजीत कर निग्रहीत किये जाने पर दूसरे राजाओं के पास चली जाती है।

मदजलदुर्दिनान्धकारगजघनघटापरिपालिता- मदजल रूपी वर्षा से अन्धकारपूर्ण दुर्दिन उत्पन्न करने वाले हाथियों के समूह रूपी बादलों की घटा से सुरक्षित, मदेन जलं मदजलम् (तृतीया तत्पुरुषः) तेन दुर्दिनेन कृतः अंधकार दुर्दिनान्धकारः, तद्युक्ता गजा एव घनाः तेषां घटया परिपालिता (परि+पाल्+क्त+टाप्)। प्रपलायते- पलायन कर जाती है, भाग जाती है (प्र+परा+अय, आत्मनेपद, लट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन)। परिचयं- परिचय की, न रक्षति- रक्षा नहीं करती। अभिजनम्- कुल को। न ईक्षते- नहीं देखती है। रूपम्- रूप को न आलोकयते- नहीं देखती है अर्थात् अत्यन्त कुरूप के घर भी चली जाती है। कुलक्रमम्- कुलपरम्परा का। न अनुवर्तते- अनुकरण नहीं करती

(अनु+वृतु+लटल्.प्र.पु.एकवचन) शीलम्- सच्चरित्रता को। न पश्यति- नहीं देखती है। वैदग्धम्- पाण्डित्य को न गणयति- नहीं गिनती, परवाह नहीं करती। श्रुतम्- शास्त्रज्ञान को। न आकर्णयति नहीं सुनती, अर्थात् निरक्षर का भी आश्रय ले लेती है। धर्मम- धर्म का। न अनुरुध्यते- अनुरोध नहीं मानती (अनु+रुध्+लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन)। अर्थात् दान देने वाले को छोड़कर कृपण के पास चली जाती है। विशेषज्ञताम् विशेषज्ञन का, न विचारयति विचार नहीं करती, आचारम्- शिष्टाचार का। न पालयति- पालन नहीं करती अर्थात् कुलटास्त्रियों की भाँति आचरण करती है। सत्यं – सत्य को, न अवबुध्यते- नहीं समझती है।(अव+बुध्+लट्लकार, प्र.पु., एकवचन) अर्थात् सत्यवादी को त्यागकर झूठे के यहाँ चली जाती है।

लक्षणम्- शरीरस्थ शुभलक्षणों को। न प्रमाणीकरोति- प्रमाण नहीं मानती है। गन्धर्व नगर लेखा इव- गन्धर्वनगर के रेखाचित्र की भाँति, गन्धर्वाणां नगरस्य लेखा (षष्ठीतत्पुरुष समास) इव। पश्यतः- देखते ही देखते (दृश्+शतृ+षष्ठी विभक्ति, एकवचन) यहाँ नश्यति –नष्ट हो जाती है। दृश् को 'पश्य' आदेश हुआ है। 'षष्ठी चानादरे' नियम से यहाँ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। अद्यापि- आज भी। आरूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारा इव- मन्दराचल के घूमने से उत्पन्न भँवरों के चक्कर से युक्त घूमने के संस्कार से युक्त सी, मन्दरस्य परिवर्तनेन (उत्पन्नो यो) आवर्तः तस्मिन् भ्रान्तितया जनितः संस्कारो यस्याः सा (तत्पुरुषमर्थक बहुव्रीहि), आरूढः (आ+रुह्+क्त) मन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारः यस्यां सा। यहाँ 'इव' उत्प्रेक्षा का वाचक है। परिभ्रमति- घूमती है अर्थात् घर-घर चक्कर काटती है। कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टका इव- कमलिनियों में घूमने के सम्पर्क के कारण लगे हुए कमलनाल के काँटो से बिंधी हुई सी, कमलिनीषु संचरणस्य व्यतिकरेण लग्नानि कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्नानि, चलं तानि च नलिनकण्टकानि तैः क्षताः (क्षण+क्त+टाप्)। क्वचिदपि- कहीं भी। निर्भरम्- दृढ़तापूर्ण, क्रियाविशेषण होने से यहाँ द्वितीया का प्रयोग हुआ है। पदम्- चरण को। न आवध्नाति- नहीं टिकाती (आ+बन्ध+लट्लकार, प्र.पु., एकवचन)। यहाँ 'पदम्' मेंओं श्लेषालङ्कार है जिसका नारी पक्ष में 'चरण' अर्थ है, और लक्ष्मी पक्ष में 'प्रतिष्ठा' अर्थ है। परमेश्वरगृहेषु- श्रेष्ठ राजाओं या धनिकों के भवनों में, परमाश्च ते ईश्वराः तेषां गृहेषु (षष्ठीतत्पुरुष समास)। अतिप्रयत्नविधृता- अत्यन्त प्रयत्न से रखी गयी, अतिप्रयत्नेन विधृता

(वि+धृ+क्त+टाप्)। विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्ता इव- अनेक मदमस्त हाथियों के गण्डस्थल से झरते हुए मद के पीने से मतवाली सी विविधाः विधाः येषां ते विविधाः गन्धयुक्ता गजाः गन्धगजाः (शाकपार्थिवादि) से मध्यपदलोपी समास), विविधानां गन्धगजानां गण्डयोः मधुपानेन मत्ता। परिस्खलति- फिसल जाती है (परि+स्खल+लट्लकार, प्र.पु.एकवचन)।

पारुष्यम्- कठोरता को, (परुष+भावेष्यञ्) उपशिक्षितुम्- सीखने के लिये (उप+शिक्ष्+तुमुन्)। असिधारासु- तलवार की धार में, असीनां धारासु (षष्ठी तत्पुरुष)। निवसति- निवास करती है।

विशेष- 1. उपर्युक्त गद्यांश में लक्ष्मी के स्वाभाविक दोषों का चित्रण है। यहाँ कवि ने चूर्णक शैली के गद्य का प्रयोग किया है।

2. इस गद्यांश में 'लक्षणम्' पद के द्वारा राज्यप्राप्ति या चक्रवर्ती के लक्षण का उल्लेख है। जैसा कि उक्ति है- "यस्य पाणितलौरक्तौ तस्य राज्यं विनिर्दिशत्।"

3. यहाँ 'गन्धर्वनगरलेखेव' में उपमालङ्कार है। जैसे दृष्टिदोष के कारण आकाश में दिखायी देने वाली मिथ्याभासी नगराकार रेखा नष्ट हो जाती है, वैसे ही लक्ष्मी सहसा निवास करती है एवं अचानक ही दृष्टि से ओझल हो जाती है।

4. यहाँ 'अद्याप्यारुढमन्दर' वाक्यांश से कवि ने समुद्रमन्थन की पौराणिक कथा का सङ्केत किया है। यहाँ इव उत्प्रेक्षालङ्कार का वाचक है। जिसका लक्षण है- 'सम्भावनथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत्।' (साहित्य)दर्पण

शुकनासोपदेश- विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्। लतेव विटपलकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्चञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसङ्कान्तिः। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी। दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छाया स्वल्पसत्वमुन्मत्तीकरोति। सरस्वती परिगृहीतमीष्ययेव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्त्वम् मङ्गलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति।

मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्याशेऽपि महाकविना लक्ष्म्या: दोषान् भृशंवर्णयतिभृशं- विश्वरूपत्वमिति। विश्वं- ब्रह्माण्ड तस्य रूपाणि आकृतयः यत्र तथोक्तं यद्रूपं तद् विश्वरूपम् तस्य भावः विश्वरूपत्वम् ग्रहीतुं-धारयितुम् नारायणमूर्तिम्- जनार्दनशरीरम् आश्रिता- अधिगता। अप्रत्ययो-अविश्वासो बहुलो यस्याः एवंभूता सती दिवसान्ते- दिवसावसाने यथा कमलं स्वाश्रयं मुञ्चति तथा स्वाश्रयीभूतं भूभुजम्। राजानम्- अपि समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि- सम्यक् प्रकारेण उपचितानि वृद्धिं प्राप्तानि मूलं- मित्रादिमूलकन्दः दण्डो- नालम् कोशः- कमलाभ्यन्तरम् मण्डलम्- पारिमाण्डल्यं एतानि यस्य पक्षे- विग्रहः, दण्डः-करः, कोशो- भाण्डागारः, मण्डलंदेशो यस्य तं तादृशं च भूभुजं- नृपतिं मुञ्चति- परित्यजति अर्थात् नृपान्तरमवलम्बते इत्यर्थः। अतएव विश्वासाधिक्यम् इति।

लतेव- व्रततिरिव (लक्ष्मी) विटपकान्- निन्दितकामुकान् पक्षे वृक्षशाखाः च अध्यारोहति- आश्रयणं करोति। गङ्गा- त्रिपथगा इव वसुजनन्यपि वसु इतिनाम्नः अष्टदेवविशेषाणां जनन्यपि- जनयित्री अपि तरङ्बुद्बुद्वत्- तरङ्गाः बुद्बुदः- भङ्गस्थासकाः तद्वत् चञ्चला- चपला पक्षे-वसो- भीष्मस्य जननी तरङ्गबुद्बुदाभ्यां चाञ्चल्यवती च। दिवसकरःसूर्यः तस्य गतिः- गमनं सैव लक्ष्मीः प्रकटिता- आविष्कृता विविधेषु-नानाप्रकारेषु लोकेषु सङ्क्रान्तिः- सञ्चारो यया सा तादृशी पक्षे प्रकटिता विविधाः मेषादयः सङ्क्रान्तयः राश्यन्तर सङ्क्रमणानि यया सा तादृशी।

पातालगुहेव- पातालकन्दरो इव सैवलक्ष्मीः तमोबहुला- तमः तमोगुणः तेन बहुला दृढा, पक्षे तमोऽन्धकारः बहुलो यस्यां सा तादृशी हिडिम्बेव- घटोत्कचजननीहिडिम्बा राक्षसी इव सा लक्ष्मीः भीमसाहसैकहार्यहृदया- भीमसाहसेन- अतिकठिनकर्मणैकम्- अद्वितीयम् हार्यं हृदयं यस्याः। पक्षे भीमस्य- वृकोदरस्य यः साहसगुणः तेन हार्यं हृदयं यस्याः सा तादृशी। प्रावृट्- वर्षाकालः सा एव अचिरा- अल्पकालीना या द्युतिः प्रकाशः तत्कारिणी अर्थात् स्वल्पसमयवर्तिनी पुरगृहादिशोभां कर्तुं शीलं यस्या तादृशी पक्षे अचिरद्युतिं तडितं कर्तृं शीलं यस्याः सा तादृशी।

दुष्टपिशाची इव- दुष्टा- क्रूरा या पिशाची राक्षसी सा इव दर्शितः- प्रकटीकृतः अनेकपुरुषाणाम्- बहूनां पुरुषाणां उच्छ्र यः। अभ्युदयो यया सा तथोक्ता सती, पक्षे

ऊर्ध्वीकृतभुजपाणिनरमानं पुरुषः एवंभूता सा लक्ष्मीः स्वल्पसत्वम्- अल्पसाहसं नरम् उन्मत्तीकरोति- उन्मत्ततां नयति। सरस्वती- भारती तया परिगृहीतं- स्वीकृतं नरमीर्ष्ययेव- मत्सरेण नालिङ्गति+न आश्लिष्यन्ति।

गुणवन्तम्- शौर्यादिगुणयुक्तं जनम् अपवित्रमिव- अपावनम् इव न स्पृशति- स्पर्शं न करोति। उदारसत्त्वं- उदारं स्फारं 'सत्वम् यस्य एवंविधम् पुरुषम् अमङ्गलम् इव न बहु मन्यते'। सुजनम्- शुभ जनम्,- अनिमित्तमिव- निष्फलमिव न बहु मन्यते-आदरं न करोति।

अभिजातम्- कुलीनम् अहिम् इव-सर्पमिव लङ्घयति- अतिक्रम्प गच्छति। शूरं- शौर्यादिमुणयुक्तं जनं कण्टकमिव परिहरति- परित्यजति। दातारम्- दानदातारम् बहुप्रदम् जनं दुःस्वप्नम् इव- अशुभस्वप्नमिव न स्मरति- दानदातारम् बहुप्रदम् जनं दुःस्वप्नम् इव- अशुभस्वप्नमिव न स्मरति- स्मरणमपि न करोति। विनीतं- विनयगुणयुक्तं जनं पातकिनम् इव- पापकारिणम् इव नोपसर्पति- पार्श्वे न गच्छति। मनस्विनं- पण्डितम् उन्मत्तमिव- उन्मादवन्तमिव उपहसति- उपहासं करोति।

हिन्दी अनुवाद – विश्वरूपता (स्वव्यापकता) के लिये प्राप्त करने के मानो यह (लक्ष्मी) विष्णुभगवान् के शरीर का आश्रय लेती है। अत्यधिक विश्वास के अयोग्य यह (लक्ष्मी) बढ़े हुए (परिपुष्ट) जड (मूल), दण्ड (नाल), कोश (मध्यभाग) तथा बाह्य मण्डल वाले सन्ध्याकालीन कमल की भाँति समृद्धि को प्राप्त हुए मूल अर्थात् मूलस्थान (देश) आदि दण्ड अर्थात् सेना या कर तथा कोश (खजाना) और मण्डल (सामन्तसमूह के मण्डल) वाले राजाओं को भी छोड़ देती है। वृक्षों पर चढ़ने वाली लता की भाँति यह (लक्ष्मी) विटपों अर्थात् दुष्टों को पालने वाले का आश्रय लेती है। अर्थात् उनके पास चली जाती है। (अष्ट) वसुओं को जन्म देने वाली होते हुए भी तरङ्ग और बुद्बुदों से चञ्चल गङ्गा की भाँति चञ्चल है। (सूर्य की गति के समान यह (लक्ष्मी) विविध व्यक्तियों में सञ्चरण करती है। अनेक (राशियों की) सङ्क्रान्तियों से युक्त अत्यधिक अंधकार से युक्त पाताल की गुफा की भाँति (यह) अधिक तमोगुण वाली है। केवल भीम के साहस से (प्रभावित हो जाने के कारण उनके प्रति) खींचे जाने वाले हृदय से युक्त हिडिम्बा राक्षसी के समान यह केवल प्रचण्ड साहस से खींचे जाने वाले हृदय से युक्त है। वर्षाकाल की भाँति शीघ्रसमाप्त होने वाली (अल्प) प्रकाश वाली है। अनेक पुरुषों की ऊँचाई प्रकट करके अल्पसाहस वाले (व्यक्ति) को उन्मत्त करने वाली दुष्ट पिशाची की

भाँति यह (लक्ष्मी) (कमजोर) हृदय वाले व्यक्तियों को (उन्नति की आशा में) पागल बना देती है। सरस्वती के द्वारा ग्रहण किये गये (मनुष्यों) विद्वानों का (यह लक्ष्मी) मानों ईर्ष्या के कारण आलिङ्गन नहीं करती। (शौर्यादि) गुणों से युक्त पुरुष का अपवित्र (वस्तु) की भाँति स्पर्श नहीं करती। उदारहृदय का अमङ्गल के समान आदर नहीं करती। सज्जन को अपशकुन की भाँति देखती (भी) नहीं। कुलीन पुरुष को सर्प की भाँति लाँघ जाती है। शूरवीर को काँटे की भाँति त्याग देती है। दानी (पुरुष) को दुःस्वप्न की भाँति स्मरण नहीं करती। विनीत (पुरुष) के पास पापी की भाँति नहीं जाती। पण्डित (बुद्धिमान) को पागल की भाँति समझकर उपहास करती है।

पदार्थमीमांसा- विश्वरूपत्वम्- सर्वव्यापकता, अनेकरूपता, विश्वानि रुपानि यस्य सः (बहुव्रीहि समास) तस्य भावः विश्वरूपत्वम्। यहाँ 'भावेत्वतलौ' से 'त्व' प्रत्यय संयुक्त हुआ है। ग्रहीतुम्- धारण करने के लिये, ग्रह-तुमुन्। नारायणमूर्तिम्- विष्णु भगवान् के शरीर को, नारायणस्य मूर्तिम् (षष्ठी तत्पुरुष)। आश्रिता- आश्रय ग्रहण किये हुए (आ+श्रि+क्त+टाप्)। अप्रत्ययः बहुलः यस्यां सा (नञ्बहुव्रीहि)। दिवसान्तकमलम्- संध्याकालीन कमल, दिवसस्य अन्तः दिवसान्तः तत्कालीनं कमलम्। समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम्- भली प्रकार से बढ़ी हुई जड, दण्ड, कोश और बाह्य मण्डल (विस्तार) वाले कमल को, राजा पक्ष में समृद्धि को प्राप्त क्षेत्र, सेना, खजाना, तथा सामन्तमण्डल (समूह) वाले, समुपचितानि मूलं दण्डः कोशः मण्डलं च यस्य तम् (बहुव्रीहि समास)। भुभुजम्- राजा को, भुवं भुनक्ति इति भूभुज तम्। मुञ्चति- छोड़ देती है (मुच्+लट्लकार, प्रथम पु० (एकवचन)। लतेव- लता की भाँति। विटपकान्- टहनियों को (लतापक्ष) धूर्तो के सरदारों को (राजापक्ष) विटान् पान्तीति विटपाः ते एव विटपकाः ('स्वार्थेकन्' प्रत्ययः)।अध्यारोहति- आश्रय लेती है (अधि+आ+रुह+लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन)।

गङ्गेव (देवनदी)- गङ्गा की भांति। वसुजननी- (आठ) वसुओं की माता (गङ्गापक्ष), धनसम्पत्ति उत्पन्न करने वाली,लक्ष्मी पक्ष- धनोत्पादक वसूनां जननी (षष्ठी तत्पुरुष)। तरङ्गबुद्बुद् चञ्चला- तरङ्गो बुद्बुदों के समान चञ्चल, तरङ्गाश्च बुद्बुदाश्च तरङ्गबुद्बुदा तद्वत् चञ्चला लक्ष्मीपक्ष में- अपार सम्पत्ति की जननी होने पर भी तरङ्ग बुद्बुद की भाँति चपल। इस से लक्ष्मी की अस्थायिता का बोध होता है। दिवसकरगतिः- सूर्य की गति- दिवसं करोतीति दिवसकरः तस्य मतिः (गम्+क्तिन्

'स्त्रियां क्तिन्' से, षष्ठी तत्पुरुष समास)। प्रकटितविविधसङ्क्रान्तिः- अनेक राशियों में सङ्क्रान्ति प्रकट करने वाले, प्रकटिताः विविधाः सङ्क्रान्तयः यया सा अथवा प्रकटिता विविधेषु संक्रान्तिः यया सा। अनेक व्यक्तियों संचरण करना प्रकट कर दिया ऐसी लक्ष्मी (प्र+कट्+क्त+टाप्)।

पातालगुहेव- पालात की गुफा की भाँति, पातालस्य गुहा (षष्ठी तत्पुरुष)तमोबहुला- घने अंधकार वाली, तमसा बहुला (तृतीया तत्पुरुष 'तृतीया तत्कृतार्थेन' नियम से) अथवा लक्ष्मीपक्ष में अधिक तमोगुणवाली, तमः बहुलं यस्यां सा। हिडिम्बेव- हिडिम्बा (घटोत्कच की माता) के समान। भीमसाहसैकहार्यहृदया- भीम के साहस से ही जिसका हृदय जीता जा सकता था (ऐसी हिडिम्बा) भीमस्य साहसेने एकहार्यम् (हृ+ण्यत्) हृदयं यस्याः सा (बहु०) लक्ष्मीपक्ष में- केवल प्रचण्ड साहस से ही जिसका हृदय हरा जा जा सकता है, ऐसी लक्ष्मी, भीमं च तत् साहसं भीमसाहसं तेन एव हार्यं हृदयं यस्याः सा (बहु०)

प्रावृट् इव- वर्षाकाल की भाँति (विद्युत् उत्पन्न करने वाली) अचिरद्युतिकारिणी- अचिरं द्युतिं कर्तुम् ।शीलं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास) लक्ष्मीपक्ष में- अल्प समय तक शोभा करने वाली (लक्ष्मी), अचिराद्युतिः वां कर्तुम् शीलं यस्याः सा (बहुव्रीहिसमास)। दुष्टपिशाचीव- दुष्ट पिशाची की भाँति, दुष्टा चासौ (कर्मधारय समास)। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया- अनेक पुरुषों के बराबर ऊँची छाया वाली। (पिशाची), अनेक पुरुषों की उन्नति दिखाने वाली (लक्ष्मी)। दर्शितः अनेकेषां पुरुषाणां उच्छ्रायः (उत्+श्रि+घञ्) यया सा (बहुव्रीहिसमास)। स्वल्पसत्त्वं- थोड़े साहस वाले व्यक्ति को पिशाची यह लक्ष्मी पक्ष- थोड़ी बुद्धि वाले व्यक्ति को, स्वल्पं सत्त्वं यस्य सः तम् (बहुव्रीहि०की भाँति स०। उन्मत्तीकरोति- उन्मत्त (पागल) सा कर देती है, अनुन्मत्तम् उन्मत्तम् करोतीति उन्मत्तीकरोति (उत्+मद्+क्त+च्वि+कृ+लट्लकार, प्रथमपुरुष एकचवन) यहाँ 'सम्पद्यकर्तरि अभूततद्भावे च्विः' से 'च्वि' प्रत्यय हुआ है।

सरस्वतीपरिगृहीताम्- सरस्वती के द्वारा अपनाये गये व्यक्ति को (परि+गृह+क्त+टाप्) ईष्या इव- मानों ईर्ष्या के कारण। न आलिङ्गति- आलिङ्गन नहीं करती। गुणवन्तं जनम्- गुणशाली व्यक्ति को। अपवित्रमिव- अपवित्र की भाँति। न स्पृशति- स्पर्श नहीं करती। उदारसत्त्वम्- उदारहृदय वाले व्यक्ति को, उदारं सत्त्वं यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि समास)। अमङ्गलमिव- अशुभ वस्तु की भाँति, समझकर न

बहुमन्यते- अधिक नहीं मानती, सम्मान नहीं देती। अनिमित्तमिव- अपशकुन की भाँति। न पश्यति- नहीं देखती। अभिजातम्- कुलीन पुरुष को (अभि+जन+क्त)। अहिमिव- सर्प की भाँति। लङ्घयति- लाँघ जाती है। शूरम्- वीर पुरुष को। कण्टकम् इव- मानो काँटा समझकर परिहरति- त्याग देती है (परि+हर+लट्लकार, प्र०पु० एक०)। दातारम्- दानी को (दा+तृच्, द्वितीया, एकवचन)। दुःस्वप्नम् इव- बुरे स्वप्न की भाँति (अशुभ) समझकर, दुष्टः स्वप्नः दुःस्वप्नः तम् इव (कर्मधारय समास)।

न स्मरति- याद नहीं करती है (स्म+लट्लकार, प्र०पु० एक०)। विनीतम्- विनयशील, विनम्र (पुरुष) को, (वि+नी+क्त)। पातकिनम् इव- पापी की भाँति, पातकानि अस्य सन्तीति पातकी (पातक+ताच्छील्ये णिनि) तम् इव। न उपसर्पतिः पास नहीं जाती। मनस्विनम्- बुद्धिमान या दृढसंकल्पी व्यक्ति को, प्रशस्तं मनः अस्य अस्तीति मनस्वी तम् (मनस्वी+विनि)। उन्मत्तम् इव- पागल की भॉति समझकर। उपहसति- उपहास करती है। अर्थात् लक्ष्मी शुद्ध हृदय वाले और दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति का भी उपहास करती है फलतः सभी गुणों की उपेक्षा करके दुर्गुणों वाले व्यक्ति का आश्रय लेती है।

विशेष- 1. इस गद्यखण्ड में कवि ने लक्ष्मी के दुर्गुणों का वर्णन किया है।

2. यहाँ 'गङ्गेव वसुजननी' कथन के द्वारा एक पौराणिक कथा का सङ्केत किया गया है। जिसके अनुसार वशिष्ठ के शापवश गङ्गा नें शान्तनु की पत्नी बन कर आठ वसुओं को जन्म दिया था। भीष्म को वसु का अन्तिम अवतार माना गया है।

3. 'दिवसकरगतिः' से बाणभट्ट ने उस तथ्य का सङ्केत किया है जिसके अनुसार पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है, यह तथ्य विज्ञान से भी प्रमाणित हो चुका है।

4. 'हिडिम्बेव, गद्यांश के द्वारा कवि ने महाभारतकाल की उस कथा का सङ्केत किया है, जिसके अनुसार भीम की वीरता पर मुग्ध होकर हिडिम्बा राक्षसी ने उनसे विवाह किया था और घटोत्कच नामक वीरपुत्र को जन्म दिया था।

5. यहाँ 'अप्रत्ययबहुला' से 'भूभुजम्' पर्यन्त वाक्य में विभावना और विशेषोक्ति का संदेहसङ्कर तथा पूर्णोपमालङ्कार है। एवं 'लतेव'- से 'दुष्टपिशाचीव' पर्यन्त वाक्यांश में पूर्णोपमालङ्कार है। इस गद्यांश में 'ईर्ष्ययेव' में 'इव' गुणोत्प्रेक्षा अलङ्कार

का वाचक है। एवं 'गुणवन्तम्' से उन्मत्तमिव' पर्यन्त वाक्यों में 'इव' उपमा का वाचक है।

शुकनासोपदेश- परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजचरितम्। तथाहि। संततमूष्माणामुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवा तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयन्ति। अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषी करोति। यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्गमति।

संस्कृत व्याख्या- गद्यखण्ड श्लोकेऽस्मिन् महाकविबाणभट्टेन लक्ष्म्या दुर्गुणान् प्रकाशयति- इन्द्रजालमिव- कुहकमिव परस्परविरुद्धम्-अन्योन्येन असम्बद्धम् दर्शयन्ती- प्रकाशयन्ती निजम्- स्वकीयं चरितम् वृत्तम् जगति- लोके प्रकटयति- आविष्करोति। संततम्- अनारतम्, ऊष्माणं- तापम् उपजनयन्ति अपि- उत्पादयन्त्यपि जाड्यं- शैत्यम् उपजनयति- उत्पादयति इति विरोधः शाब्दः अर्थात् तापपरिहारः तु ऊष्माणं -दर्पं शैत्यं- जाड्यम्। उन्नतिम्- ऊर्ध्वमतिं आदधानापि- कुर्वाणा अपि नीचस्वभावताम्- नीचवृत्तित्वम् आविष्करोति- प्रकट्यति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु उन्नतिम्- उत्कर्षम् नीचस्वभावोऽकर्तव्यं कर्म इति अर्थात्। तोयराशेः- जननिधेःऋ सकाशात् संभवापि- समुत्पन्नापि तृष्णां संवर्धयति इति विरोधः, तृष्णां- धनाकाङ्क्षां वर्धयति इति तत्परिहारः। ईश्वरतां- शिवत्वं दधाना अपि धारयन्त्यपि अशिवप्रकृतित्वम् शिवभिन्नत्वम् अति विरोधः अन्योत्पीडनकारणत्वेन अमङ्गलस्वभावत्वम् आतनोति इति समाधानम्। बलोपचयमाहरन्ति अपि कुर्वत्यपि लघिमानम्- भारहीनत्वम् आपादयति- जनयति इति शारीरिकसामर्थ्य वृद्धौ शरीरेऽवश्यम्भावात् विरोधः वलोपचयं-सैन्यवृद्धिं लघिमानम्-अकार्पण्यम् इति तत्परिहारः। अमृतसहोदरा अपि अमृतेन सहोत्पन्ना अपि कटुकरसोपेतो कटुरसत्वात् विरोधः कटुः अन्येषां सन्तापकत्वेन क्लेशकरः विपाकः परिणामो यस्याः सा तादृशीति समाधानम्।

विग्रहवत्यपि- मूर्तिमती अपि अप्रत्यक्षदर्शना- अप्रत्यक्षम्- नप्रत्यक्षगम्यं दर्शनं यस्याः सा इति विरोधः। तत्परिहारस्तु विग्रहवती- कलहवती अपि प्रेरकतया युद्धवत्यपि मिथः संग्रामविधायिनीअ पि देवत्वादेव अप्रत्यक्षदर्शना इति परिहारः। पुरुषोत्तमे- उत्कृष्टपुरुषे रता अपि- अर्थात् भगवत् विष्णु आसक्ता अपि खलजनप्रिया-

दुष्टजनस्य अनुरक्ता इति विरोधः पुरुषोत्तमरताऽपि बाहुल्येन दुष्टजनावलम्बिनी इति परिहारः। रेणुमयीव रजोगुणमयी इव स्वच्छमपि- निर्मलमपि कलुषीकरोति- मलिनीकरोति अर्थात् स्वच्छमपि रागाहङ्काररहितमपि जनं कलुषीकरोति इति परिहारः। चपला- चञ्चल। (इयं लक्ष्मी) यथा- तथा- तेन- तेन प्रकारेण दीपकशिखेव दीपज्वालया इव कज्जलवत्- कृष्णवर्णवत् मलिनं कर्म उद्गमति- उद्गिरति दीपशिखापि कज्जललक्षणं यत् मलिनं कर्म तदेव उद्गिरति।

हिन्दी अनुवाद- (एवं प्रकारिका यह लक्ष्मी) इन्द्रजाल (जादू) की भाँति परस्पर विरुद्ध (बातें) दिखाती हुई लोक में अपना (विलक्षण) चरित्र प्रकट करती है। जैसे कि निरन्तर गर्मी (दर्प) उत्पन्न करती हुई भी जडता (शीतलता अथवा) मूर्खता उत्पन्न करती है। उन्नति (ऊँचाई) को धारण करती हुई भी नीच स्वभाव को प्रकट करती है। समुद्र से उत्पन्न होने पर भी तृष्णा (प्यास, पक्ष में) लोलुपता को बढाती है। प्रभुता को धारण करती हुई भी अशिव स्वभाव (अमङ्गलकारी स्वभाव) का विस्तार करती है। बलसमूह (शारीरिकशक्ति पक्षान्तर में सैन्यसमूह) को लाती हुई भी लघुता (हल्कापन पक्षान्तर में तुच्छता या नीचता) को प्राप्त कराती है। अमृत की सहोदरा (सभी बहन) होने पर भी कडवे फल (कटुफल, पक्षान्तर में दुखदपरिणाम) वाली है। विग्रह (शरीर, पक्षान्तर में कलह) वाली होकर भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती। रेणुमयी (धूलि से युक्त, पक्षान्तर में रजोगुणनिर्मित) होने पर भी यह लक्ष्मी स्वच्छ (निर्मल पक्षान्तर में रागोद्वेष से रहित) को भी कलुषित (मलिन, पक्षान्तर में दोषी) बना देती है। और जैसे-जैसे यह चञ्चला (लक्ष्मी) प्रदीप्त (प्रकाशित) होती है, वैसे-वैसे दीपक की ज्वाला (लौ) से उत्पन्न के काजल के समान मलिन कर्मों को ही उगलती (प्रकट) करती है।

पदार्थमीमांसा- जगति- संसार में (जगत्+सप्तमी ० एकवचन) यहाँ आधार अर्थ में सप्तमी का प्रयोग हुआ है- 'आधारोऽधिकरणम्', 'सप्तम्यधिकरणे च' इस पाणिनि नियम से। इन्द्रजालम् इव- इन्द्रजाल (जादू) की भाँति, यहाँ इव उत्प्रेक्षा (क्रियोत्प्रेक्षा) का वाचक है। इन्द्रस्य जालम्- षष्ठी तत्पुरुष समास दर्शयन्ती- दिखाती हुई (दृश+णिच्+शतृ+ङीप् 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इस सूत्र से)। परस्परविरुद्धम्- परस्परविरुद्ध या असम्बद्ध। निजचरितम्- अपने आचरण (व्यवहार) को, प्रकटयति- प्रकट करती है (प्र+कट्+णिच्, लट्लकार, प्र०पु०, एकवचन)। तथाहि- जैसे कि सततम्- निरन्तर (सम्-तन्+क्त नपुंसकलिङ्ग प्र०पु०, एकवचन)। ऊष्माणम्- दर्प या गर्मी को।

उपजनयन्ती अपि- उत्पन्न करती हुई भी (उप+जन्+णिच्+शतृ+ङीप्)। जाड्यम्- मूर्खता, जडता या शीतलता को। उपजनयति- उत्पन्न करती है। उप+जन+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०, एक०) यहाँ उपजनयति- उत्पन्न करती है उप+जन+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०, एक०) यहाँ ऊष्मा और जाड्य उत्पन्न करने से विरोधाभास अलङ्कार है, किन्तु 'ऊष्मा' का 'दर्प' अर्थ और 'जाड्य' का मूर्खता अर्थ करने पर विरोध परिहार हो जाता है। उन्नतिम्- ऊँचाई को, वृद्धि को (उत्+नम्+क्तिन्)। आदधानामपि- धारण करती हुई भी (आ+धा+शानच्+टाप्)। नीचस्वभावताम्- नीच स्वभाव को, निम्नता को, नीचः स्वभावः यस्याः सा तस्य भावः ताम्। आविष्करोति- प्रकट करती है, यहाँ भी विरोधाभास अलङ्कार है। तोयराशिसम्भवा अपि- जलराशि से उत्पन्न होने पर भी, तोयानां राशिः तोयराशिः तस्मात् सम्भवति- षष्ठी तत्पुरुष। तृष्णाम्, लोभ को, प्यास को। संवर्धयति- बढ़ाती है (सम्+वृध्+णिच्, लट्लकार, प्र०पु०, एकवचन)। ईश्वरताम्- प्रभुता को, ऐश्वर्य को। दधाना- धारण करती हुई। अशिवप्रकृतित्वम्- अमङ्गल स्वभाव को, शिव न होने के भाव को, शिवस्य प्रकृतिः शिवप्रकृति, न शिवस्य प्रकृतिः तस्य भावः- अशिवप्रकृतित्वम्। आतनोति- फैलाती है, विस्तारित करती है। बलोपचयम्- बल समूह को, सैन्य समूह को, बलस्य उपचयम् (ष०त०)। आहरन्ती अपि- ले आती हुई भी, बढ़ाती हुई भी (आ+हृ+शतृ+ङीप्)। लघिमानम्- लघुता को, तुच्छता को, आपादयति- प्राप्त कराती है (आ+पद+णिच+लट्लकार, प्र०पु०, एक०)। यहाँ भी विरोधाभास अलङ्कार है। अमृतसहोदरा अपि- अमृत की सहोदरा होने पर भी, समानं उदरम् यस्याः सा सहोदरा, अमृतस्य सहोदरा (षष्ठी तत्पुरुष)। कटुविपाका -कडवे फल वाली, क्लेशकर परिणाम देने वाली। कटुकः विपाकः यस्याः सा (बहुव्रीहि समास)। विग्रहवती अपि- शरीरधारिणी या कलह (झगड़ा) कराने वाली होने पर भी। अप्रत्यक्षदर्शना- प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली नास्ति प्रत्यक्षं दर्शनं यस्याः सा (नञ्बहुव्रीहि समास)। पुरुषोत्तमरता अपि- श्रेष्ठ पुरुष या विष्णु में अनुरक्त होने पर भी, पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः, तस्मिन् रता अपि। खलजनप्रिया- दुष्ट जनो से प्रेम करने वाली, खलाश्च ते जनाः तेषां प्रिया (षष्ठी तत्पुरुष)। यहाँ भी विरोधाभास अलङ्कार है। रेणुमयी इव- धूलि या रजोगुण से निर्मित की भाँति, रेणुना निर्मितम् रेणुमयी (रेणु+मयट्+ङीप्)। स्वच्छमपि- स्वच्छ या रागद्वेषरहित होने पर भी। कलुषीकरोति- मलिन या दोषी बना देती है,

(कलुष+च्वि+कृ+लट्लकार प्र०पु०(एक.)। अर्थात् रजोगुणनिर्मित लक्ष्मी रागद्वेषादि से शून्य व्यक्ति को भी रागद्वेष युक्त कर देती है। यहाँ भी विरोधाभास अलङ्कार है।

विशेष-

1. इस गद्यांश में महाकवि ने लक्ष्मी के स्वभाव का स्वाभाविक वर्णन किया है।
2. इस गद्यांश में 'सततमूष्माणं' से 'कलुषीकरोति' पर्यन्त वाक्य में विरोधाभास अलङ्कार है। जिसका लक्षण करते हुए काव्यप्रकाशकार कहते हैं- विरोधः सोऽविरोधोऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।। (काव्यप्रकाश- दशम उल्लास)
3. यहाँ 'इन्द्रजालमिव' एवं रेणुमयीव में उत्प्रेक्षालङ्कार है। जिसका लक्षण काव्यप्रकाशकार इस प्रकार करते है- 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।'
4. यहाँ कवि के अमृतसहोदरा, 'तोयराशिसम्भवा' पदों के प्रयोग से उसके पौराणिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

शुकनासोपदेश- यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधिगीतिरिन्द्रियमृगाणाम् परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताकासर्वाविनयानाम्,

संस्कृत व्याख्या- यथा-यथा येन-येन प्रकारेण च इयं- लक्ष्मीः चपला- चञ्चला दीप्यते प्रकाशते आविर्भवति वा तथा-तथा-तेन-तेन प्रकारेण दीपशिखेव- दीपकज्वाला इव कज्जलमलिनम् इव- कृष्णवर्णीय कज्जलवत् मलिनम्- कश्मलम् इव कर्मोद्वमति- परहिंसापरद्रव्यापहरणादिरूप दुष्कृतमेव उद्वमति उद्गिरति आविष्करोतिवा। तथाहि इयं लक्ष्मी तृष्णा- लोभः तल्लक्षणानां- विषवल्लीनाम् इव अनर्थजनकत्वात् संवर्धनवारिधारा- संवर्धने-विस्तारणे या वारिधारा या जलश्रेणीः तस्या वृद्धिकारिणीभूतनिरन्तर सलिलसेकः।

इन्द्रियमृगाणाम्- अक्षहरिणानाम् व्याधगीतिः- मृगवधजीविगानम् नाश्यत्वम्- नाश्यत्व साम्यात् चाक्षमृगयोः साम्यम्। सच्चरितचित्राणाम् सच्चरितानि- सदाचरणानि

तान्येव चित्राणि तेषां परामर्शम् घर्मलेखा आचरणभूत धूमङ्क्तिः, मोहः- मौढ्यम् दीर्घनिद्रा निमीलितानि तासां विभ्रमशय्याविलासशयनम्, धनमदपिशाचिकानाम्- धनमदाः द्रव्याहङ्काराः ते एव पिशाचिका- राक्षस्यः तासां निवासजीर्णवलभी- निवासाय अवस्थानाय जीर्णवलभी- जीर्णा- प्राचीना वलभी- गृहोपरिभागे स्थिता प्राचीन चन्द्रशाला इव धनमदानाम् लक्ष्म्यामेव अवस्थानात्। शास्त्रदृष्टीनां- शास्त्राणि- वेदादीनि शास्त्राणि एव दृष्टयः- लोचनानि तासां तिमिरोद्गतिः- तिमिरस्य- नेत्ररोगविशेषस्य उद्गतिः प्रादुर्भावः। सर्वाविन-यानां सर्वेषां- अविनयानाम्- सर्वविध दुश्चरित्राणां पुरःपताका अग्रे वैजयन्ती ।

हिन्दी अनुवाद- और जैसे-जैसे यह चञ्चललक्ष्मी प्रदीप्त होती है, वैसे-वैसे दीपक की शिखा (अग्रभाग) की भाँति केवल काजल की भाँति मलिन कर्मों को ही उगलती है। क्योंकि यह तृष्णारूपी विष की बेल (लताओं) को बढ़ाने वाली जलधारा है, इन्द्ररूपी हिरणों की व्याधगीत है, सच्चरित्र (सदाचार) रूपी चित्रों को आच्छादित करने वाली धूमरेखा है, मोह (अज्ञान) रूपी दीर्घनिद्रा की विलासशय्या है, धनमदरूपी पिशाचिनियों की निवासस्थलीभूता पुरानी वलभी है, शास्त्ररूपी दृष्टियों के लिये तिमिररोग (रतौधी) को उत्पन्न करने वाली है। सब प्रकार के अविनयों (दुर्बुद्धियों) की अग्रपताका है।

पदार्थमीमांसा- परामर्शधूमलेखा- आच्छादित करने (ढँकने) वाली धूमरेखा, धूम्रस्य लेखा धूमलेखा तस्य परामर्शाय (तत्पुरुष समास)। मोहदीर्घनिद्राणाम्- मोह (अज्ञान) की दीर्घनिद्रा (गाढ़ी नींद), दीर्घानिद्राः एव दीर्घनिद्रा तासाम् (कर्मधारय समास, 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' पाणिनि नियम से)। विभ्रमशय्या- विलास हेतु शय्या, विभ्रमस्य शय्या (षष्ठी त०)। धनमदपिशाचिकानाम्- धनमदरूपी पिशाचिनियों की, धनस्य मदम् धनमदम् सा एव पिशाचिकाः तासाम् (तत्पुरुषगर्भक समास)। निवासजीर्णवलभी- रहने की टूटी फूटी पुरानी वलभी, जीर्णा चासौ वलभी जीर्णवलभी (कर्मधारय समास)। अर्थात् जैसे पुराने और टूटे फूटे घरों में भूत -पिशाच रहते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मी में भी मद (गर्व) का निवास रहता है। शास्त्रदृष्टीनाम्- शास्त्ररूपी दृष्टि (नेत्रों) के लिये, शास्त्राणि एव दृष्टयः शास्त्रदृष्टयः तेषां। तिमिरोद्गतिः- तिमिर (रतौधी) नामक रोग की उत्पत्ति, तिमिरस्य उद्गतिः (उद्+गम्+क्तिन्)। वस्तुतः इस रोग में आखों के सामने अँधेरा सा छा जाता है। इसी प्रकार लक्ष्मी भी वेदादि शास्त्रों की मर्यादा नष्ट

कर देती है। पुरःपताका- आगे चलने वाली पताका, पुरः स्थिता पताका पुरपताका सर्वाविनयानाम्- सब प्रकार के दुष्टाचारों की।

यथा यथा च- और जैसे-जैसे। इयं चपला- यह चञ्चलस्वभाव वाली लक्ष्मी। दीप्यते- प्रकाशित होती है, प्रभाव दिखाती है (प्र+दीप्+ कर्मणि यक्, लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन)। तथा-तथा- वैसे-वैसे। दीपशिखेव- दीपक के अग्रभाग (लौ) की भाँति, दीपस्य शिखा इव (षष्ठी तत्पुरुष समास)। यहाँ 'इव' उपमा का वाचक है। अतः यहाँ पूर्णोपमालङ्कार है- "साधर्म्यमुपमाभेदो (काव्यप्रकाश) कज्जलमलिनम्- कज्जल की भाँति मलिन (कृष्णवर्ण) या तमोगुण से युक्त, कुत्सितं जलं कज्जलं तद्वत् मलिनम् (कर्मधारय समास)। उद्वमति- उगलती है, प्रकट करती है (उत्+वम्, लट्लकार, प्रथम पु०, एकवचन)। तथाहि- जैसे कि, क्योंकि। तृष्णाविषवल्लीनाम्- तृष्णारूपी विषबेलों की, "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः। विषस्य वल्लयः विषवल्लयः, तृष्णा एव विषवल्लयः येषाम् तेषाम् (बहुव्रीहि समास) संवर्धनवारिधारा- बढ़ाने के लिये जलधारा, वारीणां धारा वारिधारा, संवर्धनाय वारिधारा (चतुर्थ तत्पुरुष समास)। इन्द्रियमृगाः तेषाम् (रूपकालङ्कार- "रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे" (काव्य प्रकाश)। व्याधगीतिः- बहेलिये का गीत, हरिणों को फँसाने के लिये शिकारियों द्वारा गाया जाने वाला गीत। (गै+क्तिन्) व्याधानां गीतिः (षष्ठी तत्पुरुष)। सच्चरितचित्राणां- सदाचार रूपी चित्रों की, सच्चरितानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि तेषाम् (कर्मधारय समास)।

बोध प्रश्न

1. आचार्य शुकनास ने किसे उपदेश दिया था?
2. चन्द्रापीड किसका पुत्र था?
3. युवावस्था में कौन-कौन सी विकृतियाँ आती हैं?
4. गुरुवचन किस मल के प्रक्षालन में समर्थ है?
5. शुकनासोपदेश में समस्त दुर्गुणों की पुरः पताका किसे कहा गया है?
6. शुकनास नें राजकुमार को राज्याभिषेक से पूर्व उपदेश क्यों दिया था?
7. हाथी की भॉति आँख बंदकर गुरुवचनों की अवहेलना कौन करता है।
8. ‘‘पुरुषोत्तम रताऽपि खलजनप्रिया’’ में कौन सा अलङ्कार है।
9. ‘‘अष्टावसुजनन्येव’’वाक्यांश से किस कथा का सङ्केत किया गया है।

------o------

इकाई- 5

शुकनासोपदेश का अनुवाद एवं व्याख्या

(उत्पत्तिनिम्नगा से **इत्येतावद् अभिधायोपशशाम)** तक

इकाई की रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. उद्देश्य

5.3. उक्त गद्यांश का हिन्दी में अनुवाद एवं संस्कृत व्याख्या

5.4. बोधप्रश्न

5.1. प्रस्तावना-

शुकनासोपदेश के 'एवं समतिक्रामत्सु' से' पताकासर्वविनयानाम्' के अनुवाद एवं व्याख्या के पश्चात् इकाई- 5में 'उत्पत्तिनिम्नगा से इत्येतावदभिधायोपशशाम' गद्यांश की हिन्दी अनुवाद एवं व्याख्या MAST 108 संस्कृत के पाठ्यक्रम में प्रस्तावित है। विद्यार्थियों के लिये इस अंश की संस्कृत व्याख्या और हिन्दी अनुवाद के ज्ञान हेतु इस इकाई का अध्ययन अपेक्षित है।

5.2. उद्देश्य-

---

1. इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी संस्कृत से हिन्दी अनुवाद करना सीख सकेंगे।
2. इस इकाई में प्रस्तुत संस्कृत व्याख्या से छात्रों के ज्ञानकोश में वृद्धि होगी।
3. इस इकाई के अध्ययन से छात्र साहित्यिक शैली में व्याख्या करना सीख सकेंगे
4. इस इकाई के अध्ययन से छात्र समासविग्रह को समझ सकेंगे इसके साथ ही अन्य 'विशेष' बिन्दुओं को भी उद्घाटित करना सीखेंगे।

5.3. शुकनासोपदेश का हिन्दी अनुवाद एवं व्याख्या

('उत्पत्तिनिम्नगा' से 'इत्येतावदभिधायोपशशशाम') तक।

उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधवेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम् उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुष व्यवहाराणाम्।

संस्कृतव्याख्या - क्रोधेवेगग्राहाणाम्- क्रोधस्य कोपस्य ये आवेगाः- संभ्रमाः ते एव ग्राहा एतन्नाम्नः जलजन्तवः तेषां उत्पत्तिनिम्नगा- उद्भवनदी, लक्ष्म्याधिक्येन क्रोधावेगा जायन्ते इत्यर्थः। विषयमधूनाम्- स्रक्चन्दनादिभोगविषया एव मधूनि मद्यानि तेषाम् आपानभूमिः- मद्यपानगोष्ठिकास्थलम्। भ्रूविकारनाट्यानाम् -भ्रूविकाराः- भ्रुकुटिविक्षेप एव नाट्यानि- अभिनयाः तेषां सङ्गीतशाला- रङ्गशाला।

दोषविषाशीणाम्- दोषाः कामादयः एव आशीविषाः तेषाम् आवासदरी- आवासार्थम् दरी गुहा वा। सत्पुरुषव्यवहाराणाम्- सत्पुरुषाः- शिष्टजनाः तेषां व्यवहाराः आचरणानि तेषाम् उत्सारणवेत्रलता- उत्सारण-दूरीकरणम् तद्हेतोः वेत्रलता- वेत्रयष्टिः।

हिन्दी अनुवाद - क्रोध के आवेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति करने वाली नदी है, विषयभोग रूपी मदिरा की पानस्थली है, भौंहो के विकाररूपी नाट्यों की सङ्गीतशाला है, दोषरूपी विषैले सर्पों की निवासगुहा (कन्दरा) है, सज्जनपुरुषों के व्यवहारों को हटाने के लिये वेत्रयष्टि (बेंत की छड़ी) है।

पदार्थमीमांसा- क्रोधवेगग्राहाणाम्- क्रोध के आवेग रूपी ग्राहों को, क्रोधस्य आवेगः क्रोधावेगः ते एव ग्राहाः, तेषाम् उत्पत्तिनिम्नगा- जन्म देने वाली नदी, निम्नंगच्छतीति निम्नगा: उत्पत्तेः निम्नगा (षष्ठी तत्पुरुष)। विषयमधूनाम्- विषयरूपी मदिराओं की, विषया एव मधूनि तेषाम् (कर्मधारय समास) आपानभूमिः- मदिरा पीने की मधुशाला, आपानस्य भूमिः (षष्ठी तत्पुरुष)। भ्रूविकारनाट्यानाम्- भौंहो की विकृतिरूपी अभिनयों की, भ्रुवो विकाराः भ्रूविकाराः ते एव नाट्याः तेषां सङ्नितशाला- रङ्गशाला, रङ्गमञ्च सङ्गीतस्य शाला (षष्ठी तत्पुरुष)। दोषाशीविषाणां दोषरूपी विषैले सर्पों को, दोषाः एव आशीविषाः तेषाम् (कर्मधारय समास)। आवासदरी- आवास की गुफा 'दरी तु कन्दरो गुहाः' इत्यमरः'। आवासस्य दरी (चतुर्थी तत्पुरुष)। सत्पुरुषाणां व्यवहारः तेषाम् (षष्ठी तत्पुरुष)। उत्सारणवेत्रलता- दूर हटाने के लिये बेंत

की छड़ी, उत्सारणाय वेत्रलता (चतुर्थी तत्पुरुष)

आशय यह है कि लक्ष्मी के आने पर व्यक्ति (राजा) में अनेक दुर्गुण आ जाते हैं।

विशेष- 1. इस गद्यांश में लक्ष्मी के दोषों का वर्णन किया गया है।

2. इस गद्यखंड के 'दीपशिखेव' गद्यांश में उपमालङ्कार और 'इयं संवर्धनवारि धारा' से 'उत्सारणवेत्रलतापर्यन्त' गद्यांश में रूपक अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

शुकनासोपदेश- अकालप्रावृट् गुणकलहंसानाम्, विसर्पणभूमिर्लोका पवादविस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। नहि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतनियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्याभिसंधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशेऽपि महाकविना लक्ष्म्याः दोषान् प्रतिपादयति- अकालेति एषा लक्ष्मी गुणकलहंसानाम्- गुणाः दयादाक्षिण्यादय एव कल हंसाः कादम्बाः तेषाम् अकालप्रावृट्- अकाले- असमये प्राप्तः प्रावृट्- वर्षाकालः प्रावृषि हंसा नश्यन्ति, इयं लक्ष्मी तु सर्वगुणानां विनाशहेतुः इति प्रसिद्धः। लोकापवाद- विस्फोटकनाम्- लोकेषु ये अपवादा विरोधोक्तयः त एव विस्फोटकाः शिलीन्द्राणि तेषां विसर्पणभूमिः- विस्तरणस्थलम्। कपटनाटकस्य- कपटं- छलाचरणम् एव नाटकम्- अभिनयः तस्य प्रस्तावना- प्रारम्भः सूत्रधारादि प्रवेशः। कामकरिणः कामदेव एव करिणः मदनगजाः तस्य कदलिका- रम्भापादपः। साधुभावस्य- सौजन्यस्य वध्यशाला- हृनभवनम्, यतोहि विद्यमानायां लक्ष्म्यां साधुभावः लुप्यते। धर्मेन्दुमण्डलस्य धर्मो धर्मव्यहरणम् एव इन्दुमण्डलं- चन्द्रबिम्बं तस्य राहुजिह्वा- सैंहिकेयरसना अर्थात् यथा राहुजिह्वा चन्द्रग्रहण काले चन्द्रबिम्बं ग्रसति, तथैव लक्ष्मीः धर्मं ग्रसति। हि- निश्चितम् ते पुरुषं- जनम् न पश्यामि- न अवलोकयामि; यः- पुमान् अपरिचितया- परिचयपरिज्ञानशून्यया अनया- लक्ष्म्या निर्भरं- गाढम् न उपगूढम्- न आलिङ्गत: वा- अथवा यो- जनः न विप्रलब्धः- न वञ्चितः प्रतारितो वा। नियतम्- निश्चितम् इयं लक्ष्मी आलेख्यगतापि- चित्रलिखितापि चलति- स्थिरा न भवति, गृहान्तरम् प्रयाति वा। पुस्तकमयी अपि- ज्ञानमयी अपि इन्द्रजालम्- कुहुकम् इव आचरति- प्रदर्शयति।

उत्कीर्णापि- प्रस्तरादिषु उत्कारितापि विप्रलभते- झटिति परित्यज्य वञ्चयति। श्रुतापि- श्रुतमस्यःऽस्तीति श्रुता- दुराचारनिषेधकशास्त्रज्ञानयुक्ता अपि अभिसंधत्ते- कपटव्यवहारं विदधाति। चिन्तिता अपि- स्मृता अपि वञ्चयति- वञ्चनां करोति।

हिन्दी अनुवाद- (यह लक्ष्मी) गुणरूपी कलहंसों के लिये अकाल में होने वाली वर्षा है, लोकापवाद रूपी स्फोटकों (फोड़ों) के उपयुक्त भूमि है, कपटरूपी नाटक की प्रस्तावना (आरम्भ) है, कामदेव रूपी हाथी के लिये केले का पौधा है, सज्जनता (साधुआचरण) की वधशाला है, धर्मरूपी चन्द्रमण्डल के लिये (उसे ग्रसित करने वाली) राहु की जिह्वा है। क्योंकि मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखता, जिसे इस अपरिचित (लक्ष्मी) के द्वारा (पहले) प्रगाढ़ आलिङ्गन नहीं किया गया, (और बाद में) ठगा न गया हो। (यह लक्ष्मी) निश्चित रूप से चित्रलिखित होने पर भी चलती है, पुस्तकमयी (पुस्तक में लिखित अथवा ज्ञानमयी) होने पर भी इन्द्रजाल का आचरण करती है। (पत्थर में) उत्कीर्ण (खुदी हुई) होने पर भी धोखा देती है। सुनी हुई भी छल (कपट) करती है। (और केवल प्राप्त करने की इच्छा से) सोची हुई भी धोखा देती है।

पदार्थमीमांसा- गुणकलहंसानाम्- गुणरूपी श्रेष्ठ हंसो की, गुणा एव कलहंसाः तेषाम्, अकालप्रावृट्- असमय होने वाली वर्षा- अविद्यमानः कालः यस्याः सा, अकाला चासौ प्रावृट् (कर्मधारय समास)। जैसे शैत्य के कारण वे हंस मानसरोवर में नहीं रह पाते, वैसे ही कुसमय की वर्षा में सरोवरों में हंस नहीं रह पाते। लक्ष्मी के आने पर पुरुष के दया दाक्षिण्य आदि गुणों की भी यही स्थिति होती है। लोकापवादविस्फोटकानाम्- लोकापवादरूपी फोड़े की, लोकेषु अपवादाः लोकापवादाः ते एव विस्फोटकाः तेषाम् (वि+स्फुट्+अच्+स्वार्थे कन्)। विसर्पणभूमिः- फैलने के लिये उचित स्थान, विसर्पणाय भूमिः (तत्पुरुष समास) कपटनाटकस्य- छल-कपटरूपी नाटक की, कपटः एव नाटकं तस्य। प्रस्तावना- प्रारम्भ (प्र+स्तु+णिच्+च्+टाप्)है यह पारिभाषिक शब्द है। जो ग्रंथ के प्रारम्भ रूपक की विषयवस्तु की ज्ञान कराने वाला आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। कामकरिणः- कामदेव रूपी हाथी (के लिये) का, कामः एव करी, तस्य। कदलिका- केले का पौधा या कदलीवन। जैसे हाथी केले के वन में स्वच्छंदविहार करता है, वैसे ही लक्षअमी से युक्त व्यक्ति भी स्वच्छंद आचरण करता है। साधुभावस्य- सज्जनता का, साधोःभावः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुष)। वध्यशाला- हिसास्थली, वधम् अर्हति इति वध्यः तेषां शाला (षष्ठी तत्पुरुष)। धर्मेन्दुमण्डलस्थ धर्मरूपी चन्द्रमण्डल की, इन्दोः मण्डलम्

इन्दुमण्डलम्, धर्म एव इन्दुमण्डलम् तस्य। राहुजिह्वा- राहु की जीभ, राहोः जिह्वा (षष्ठी तत्पुरुष) हि- क्योंकि, वस्तुतः तम्- उस (व्यक्ति) को, न पश्यामि- मैं नहीं देखता हूँ। यः- जो हि- निश्चित रूप से। अनया अपरिचितया- इस अपरिचिता लक्ष्मी के द्वारा, न परिचिताः अपरिचिता (परि+चि+क्त+टाप्) नञ्तत्पुरुष, तया। निर्भर- अतिशयन उपगूढः आलिङ्रियेत न किया गया हो (उप+गूह+क्त)। वा+अथवा; वस्तुतः 'वा', 'च' 'हि' आदि आव्यय वाक्य के प्रारम्भ में नहीं प्रयुक्त होते। न विप्रलब्धः- ठगा न गया हो (वि+प्र+लभ्+क्त) नियतम्- निश्चय ही। इयम्- यह (लक्ष्मी) आलेख्यगतापि- चित्रलिखित होने पर भी, आलेख्यं गता (आ+लिख्+ण्यत्) आलेख्यगता (द्वितीया तत्पुरुष)। चलति-चलती है, स्थिर नही रहती।

पुस्तकमयी अपि- पुस्तक में लिखी होने पर भी, ज्ञानमयी होने पर भी (पुस्तक+प्राचुर्येमयट्+ङीप्। इन्द्रजालं- मायाजाल का, आचरति- आचरण करती है (आ+चर्+लट्लकार, प्र०पु० एक०)। उत्कीर्णा अपि- (पत्थर में) खुदी होने पर भी (उत्+कृ+क्त+टाप्)। विप्रलभते- धोखा देती है। (वि+प्र+लभ् आ०लट्०प्र०पु०एक०) श्रुता अपि- केवल सुनी हुई भी (श्रु+क्त+टाप्)। अभिसंधत्ते- कपटा चरण करती है (अभि+सम्+धा+लट्लकार आ., प्र.पु. एक.)। चिन्तिता अपि (केवल) सोची गयी भी (चिन्त्+इट्+क्त+टाप्)। वञ्चयति- धोखा देती है (वञ्च+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०, एक.), अर्थात् आने की सम्भावना होने पर भी नहीं आती।

विशेष-

1. इस गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने लक्ष्मी के ठगस्वभाव का यथार्थ चित्रण किया है। कबीरदास भी कहते हैं- माया महा ठगिनि हम जानी। निरगनाकॉसलिये कर होते बोले मधुरी बानी।
2. यहाँ लक्ष्मी के लिये 'अपरिचिता' विशेषण का प्रयोग नित्य नये राजाओं और पुरुषों की संगिनी बनने के कारण किया गया है।
3. यहाँ आलेख्य, उत्कीर्ण, पुस्त आदि शब्दों से बाणभट्ट ने चित्रादि कलाओं का सङ्केत किया है। अमरकोशकार कहते हैं- "पुस्तं लेप्यादिकर्मणि।" मिट्टी, लकड़ी वस्त्रादि से पुतली बनाने को 'पुस्त' कहा गया है।
4. यहाँ 'अकालप्रावृट्.....' से 'राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य' तक परम्परितरूपक

अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। 'न हि तं पश्यामि' इत्यादि के द्वारा लक्ष्मी में कुलटात्व का आरोप होने से यहाँ भी समासोक्ति अलङ्कार है।

'नियतमालेख्यगतापि' से 'चिन्तितापि' पर्यन्त गद्यांश में विरोधाभास अलङ्कार है। जिसका लक्षण काव्यप्रकाशकार इस प्रकार से करते हैं- "विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।" जहाँ विरोध वस्तुतः न होकर आन्तरिक हो, वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है।

शुकनासोपदेश- एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वविषयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तथाहि- अभिषेक समय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्। अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशे महाकविना लक्ष्म्यालिङ्गिताः राजानः कीदृग् परिवर्तते इति प्रतिपादयतः आह- एवंविधयापि- पूर्वोक्तलक्षणलक्षितया अपि अनया- श्रिया दुराचा या- दुष्टाचरणया कथमपि- केनापि प्रकारेण महता क्लेशेन वा दैववशेन- भाग्यवशेन परिगृहीता- स्वीकृता राजानो- नृपतयो विक्लवाःविह्वलाः भवन्ति- जायन्ते। अत्र चकारः समुच्यार्थे प्रयुक्तः। तथाहि- तस्मात् कारणाद्धि, अभिषेकसमये- राज्याभिषेककाले एव एतेषां- एषां राज्ञाम् दक्षिण्यंऔदार्यम् मङ्गलकलशजलैः- मङ्गलाय- कल्याणाय कलशाः- कुम्भाः मङ्गलकलशाः तेषां जलैः प्रक्षाल्यते इव- प्रक्षालनं विधीयते। अग्निकार्यधूमेनेव- अग्निकार्यम्- होमादिः तस्य धूमेन हृदयं स्वान्तम् चेतो वा मलिनी क्रियते। इव पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिः- पुरोहित- होमकार्यपुरोधाः तस्य कुशाग्राणि दर्भाग्राणि एव संमार्जन्यो- मार्जनसाधनभूताः ताभिः क्षान्तिः- क्षमागुणाः अपह्रियते-अपनीयते दूरीक्रियते वा। उष्णीषपट्टबन्धेन- उष्णीषं- मूर्धवेष्टनं तदेव पट्टबन्धः तेनेव जरायाः वृद्धावस्थायाः आगमनस्य स्मरणम् आच्छाद्यते- स्मृतिम् आव्रियते। आतपत्रमण्डलेन- आतपत्रं- छत्रम् तस्य मण्डलेन- निस्तलेन- परलोकस्य भवान्तरस्य दर्शनम्- अवलोकनम् अपसार्यते- दूरीक्रियते। सत्यवादिता- अवितथभाषणं चामरपवनैः- चामराख्यजनैः अपहियते इव-अपहरयाणविषयीक्रियते इव। गुणाः-

शौर्यादयो गुणाः वेत्रदण्डैः- वेतसयष्टिभिः उत्सार्यन्ते इव-दूरी क्रियन्ते इव। साधुवादाः- सौजन्यपूर्ण प्रशंसावचनः तस्यभावः जयशब्दकलरवैः- जयशब्दस्य ये कलकलरवाः- कोलाहलशब्दाः तैः तिरस्क्रियन्ते इव तिरस्कारं कुर्वन्ति इव। यशः- कीतिः "यशः कीर्तिं समज्ञा च'इत्यम: ध्वजपटपल्लवैः ध्वजाः- वैजयन्त्यः तेषां पटाः वस्त्राणि तेषां पल्लवैः- प्रान्तैः परामृश्यते इव- प्रोञ्छ्यते इव अर्थात् यशःलोपः क्रियते।

हिन्दी अनुवाद- इस प्रकार की होते हुए भी (पूर्वोक्तलक्षणौं से युक्त होने पर भी) इस दुराचारिणी (लक्ष्मी) के द्वारा किसी प्रकार (जैसे-तैसे) भाग्यवश ग्रहण किये गये (गृहीत) राजा लोग व्याकुल हो जाते हैं और समस्त अविनयों (दुराचारों, दुर्बुद्धियों) के आश्रय (निवासस्थान) बन जाते हैं। जैसे कि (उदाहरण के लिये) राज्याभिषेक के समय ही इनकी उदारता मानों मङ्गलकलशोंके जल से धो दी जाती है। अग्निकार्य (होमादि कार्य) के धुएँ से मानो (इनका) हृदय मलिन कर दिया जाता है, पुरोहितों के कुश के अग्रभाग रूपी झाड़ुओं से मानो क्षमाशीलता दूर कर दी जाती है, पगड़ी बाँधने से ढँक दी (आवरित हो) जाती है। छत्रमण्डल से मानों परलोक का दर्शन दूर कर दिया जाता है, चामर की हवा से मानों सत्यवादिता का अपहरण कर लिया जाता है, बेंत की छडियों से मानो (इनके) शौर्यादि गुण दूर कर दिये जाते है, जय-जयकार की कोलाहल की ध्वनि से मानो साधुवाद (प्रशंसावचन, सौजन्य) दूर कर दिये जाते है, और पताकाओं के पल्लवसदृश वस्त्र को आँचल से मानों यश को पोंछ दिया जाता है।

पदार्थमीमांसा- एवं विधया अपि- इस प्रकार की होते हुए भी, पूर्वोक्तलक्षणों से युक्त (लक्ष्मी से) भी, एवम् विधाः यस्या सा (बहुव्रीहि समास) तया अपि, अनया दुराचारया- इस दुराचारिणी (लक्ष्मी)के द्वारा; दुष्टः आचारः यस्या सा (बहुव्रीहि समास) तया। कथमपि- किसी प्रकार, क्लेश उठाकर भी। दैववशेन- भाग्यवश। परिगृहीताः- ग्रहण किये गये (परि+ग्रह+क्त, बहुवचन)। विक्लवाः- विह्वल, व्याकुल (वि+क्लु+अच्) भवन्ति- हो जाते हैं। सर्वाविनयाधिष्ठानताम्- सभी अविनयों, दुराचारों के अधिष्ठान (आश्रय) के भाव को, न विनया अविनयाः सर्वे च ते अविनयाः, तेषाम् अधिष्ठानम् (अधि+ष्ठा+ल्युट्) तस्य भावः सर्वाधिष्ठानता, ताम्। यहाँ "भावेत्वतलौ" से 'तल्' प्रत्यय भी हुआ है। तथाहि- जैसे कि, उदाहरण के लिये, अभिषेकसमये- राज्याभिषेक के समय। एतेषाम्- इन राजाओं का (एतत्+षष्ठी, बहुवचन)। दाक्षिण्यम्- उदारता, दानशीलता (दक्षिण+भावेष्यञ्, नपु० एक०) मङ्गलकलशजलैः मङ्गलाय कलशाः

मङ्गकलशाः तेषां जलैः (चतुर्थ एवं षष्ठी तत्पुरुष) प्रक्षाल्यते इव- मानो प्रक्षालित कर (धो) दिया जाती है (प्र+छाल+लट्ल प्र०पु०एक०कर्म.)। अग्निकार्यधूमेन- (अभिषेककाल में सम्पादित) होमाग्नि के धुएँ से, अग्ने: कार्यं अग्निकार्यं तस्यधूमेन (षष्ठी तत्पुरुष समास)। हृदयं- हृदय को। मलिनीक्रियते मानों मैला कर दिया जाता है (मलिन+च्वि+कृ कर्म,वाच्य लट्लकार, प्र०पु०, एक०) यहाँ "सम्पद्यकर्तरि अभूततद्भावेच्विः' से जो जैसा नही है वैसा करन के अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय हुआ है)। क्षान्तिः- क्षमाशीलता (क्षमु+क्तिन्)। पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिः- पुरोहितों के कुशाओं के अग्रभाग रूपी मार्जनी (झाडू) के द्वारा, कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि तानि एव सम्मार्जन्यः, पुरोहितानाम् कुशाग्रसम्मार्जन्यः, ताभिः (षष्ठी तत्पुरुष समास)। अपह्रियते इव- मानो दूर कर दी जाती है (अप+हृ+प्र०पु०, एक०, कर्मवाच्य)। जरागमनस्मरणम्- वृद्धावस्था के आगमन की स्मृति, जरायाः आगमनम् जरागमनं, तस्य स्मरणम् (षष्ठी तत्पुरुष समास) उष्णीषपट्टबन्धेन- पगड़ी के वस्त्र बाँधने से, उष्णीषस्य पट्टः उष्णीषपट्टः तस्य बन्धः उष्णीषपट्टबन्धः (षष्ठीतत्पुरुष) तेन। आच्छाद्यते इव- मानों ढँक दी जाती है (आ+छद्+णिच्, कर्म० लट्लकार, प्र०पु० एकवचन)। पलोकदर्शनम्- परलोक दर्शन, मृत्यु के बाद की स्थिति, परश्चासौ लोकः परलोकः (कर्मधारय समास) तस्य दर्शनम् (षष्ठी तत्पुरुष)। आतपत्रमण्डलेन- छत्रमण्डल से, आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् तस्य मण्डलम् (तत्पुरुष समास) तेन। अपसार्यते इव-मानो दूर हटा दिया जाता है (अप+सृ+णिच्, कर्मवाच्य, लट्लकार, प्र०पु०, एकवचन)। सत्यवादिता- सत्यबोलने का स्वभाव, सत्यं वदतीति सत्यवादी, तस्यभावः। चामरपवनैः- चँवर की हवा से, चमर्याः इमानि चामराणि (चमरी+अण्) तेषां पवनैः (तत्पुरुष) चमरीमृग के पूँछ के बालों से चँवर बनाया जाता है। अपह्रीयते इव-मानों अपहृत कर लिया जाता है। गुणाः- दया शौर्यादिगुण। वेत्रदण्डै- बेंत के डण्डों द्वारा। उत्सार्यन्ते इव- मानों हटा दिये जाते हैं (उत्+सृ+णिच्, कर्म०लट्ल०प्र०पु०, एक०)। साधुवादाः- अच्छे या प्रशंसापूर्ण वचन; साधवश्च ते वादाः साधुवादाः (कर्मधारय समास) जयशब्दकलकलरवैः- जय शब्द की मनोहर ध्वनि से, कलकलाःरखा: कलकलरवाः जयशब्दस्य कलरवाः (ष.त.) तैः। तिरस्क्रियन्ते इव- मानों अपमानित कर दिये जाते है। ध्वजपटपल्लवैः- पताकाओं के पल्लवतुल्य वस्त्राञ्चल से; ध्वजानां पटाः ध्वजपटाः ते एव पल्लवानि, तैः। परामृष्यते इव- मानों पोंछ दी जाती है। अर्थात् अभिषेक के पूर्व अर्जित यश को

राजलक्ष्मी के सङ्ग में आते ही राजालोग खो देते हैं।

विशेष-

1. इस गद्यांश में बाणभट्ट ने शुकनास (मन्त्री) के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि राजा लोग सत्कर्म से प्राप्त पूर्व यश का भी लक्ष्मी की संगति मे त्यागकर दुराचारी हो जाते हैं और अपयश को प्राप्त करते हैं।
2. इस गद्यांश के 'अनया दुराचारया' अंश में लक्ष्मी के कार्य में पिशाची का व्यवहार आरोपित होने से यहाँ समासोक्ति अलङ्कार है।

'अभिषेकसमय एव' से 'ध्वजपटपल्लवैरिव'-वावन्यानशपर्यन्त वाक्यांश में 'इव' क्रियोत्प्रेक्षा का वाचक है। "भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।" (साहित्यदर्पण)। जबकि 'पुरोहितकुशाग्र' इत्यादि अंश में निरङ्गरूपक से संकीर्ण क्रियोत्प्रेक्षा है।

शुकनासोपदेश- तथाहि, केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनगलपुटचटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिव इन्द्रियैरयास्यमानाः, प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरणेनैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियामाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव बिडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहतो इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक्परिभ्रमन्ति, अर्धभग्नागतयः पङ्गवः इव परेण सञ्चार्यन्ते मृषावादविपाकसंजातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति।

हिन्दी अनुवाद- जैसे कि कुछ लोग श्रम के कारण शिथिल हुए पक्षियों के गलप्रदेश (गलफड) के समान चञ्चल, जुगुनू की क्षणभर की (क्षणभङ्गुर) चमक की भाँति कुछ देर के लिये मनोहर, मनस्वी जनों के द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित किये जाते हुए, थोड़े से धन की प्राप्ति के गर्व (अहङ्कार) से (अपने) जन्म को (क्षणभङ्गुर जीवन को) भूल जाते हुए, अनेक (वातवित्तादि) दोषों से व्याप्त, दूषित और रक्तिम (लालिमा) के आवेश से युक्त रक्त से पीड़ित होने वाले के समान (काम क्रोधादि से जनित) अनेक दोषों से बढ़े हुए आसक्ति (विषयलालसा) के उपभोग में लालसा

रखने वाली, अतएव पाँच संख्या वाली होते हुए भी मानों अनेक सहस्र (हजारों) संख्या वाली इद्रियों से क्लेश प्राप्त करते हुए, तथा स्वभाव (प्रकृति) से चञ्चल होने के कारण प्रसार का अवसर प्राप्त करके मानों अनेक सहस्र रूप से दिखायी पड़ने वाले मन से व्याकुल किये जाते हुए विह्वलता को प्राप्त हो जाते हैं, (ऐसी स्थिति में धनसम्पन्न व्यक्ति या राजा) मानों ग्रहों द्वारा पकड़ लिये (गृहीत हो) जाते हैं मानों भूतों द्वारा आक्रान्त (अभिभूत) कर लिये जाते है, मानों यन्त्रों से आविष्ट कर लिये जाते है, मानों (हिंसक) जीवों द्वारा (बलात्) पकड़ लिये जाते हैं, मानों पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं, मानों कामदेव के बाणों से मर्मस्थल में चोट खाकर हजार मुखभङ्गिमाए (प्रकट) करते हैं, मानों धन की गर्मी से पकाये (तपाये) जाते हुए विविध चेष्टाएँ करते हैं। (तड़पते हैं), मानों तीक्ष्ण प्रहारों से आहत हुए वे शरीर के अङ्गों को (सहारे के बिना) धारण नहीं करते, केकड़ों की भाँति तिरछे घूमते है (अर्थात् कुटिल आचरण करते हैं,) अधर्म द्वारा भङ्ग की गयी गति (सत्कर्म वृत्ति) वाले होकर लँगड़े की भाँति मानों दूसरों के द्वारा (सहारा देकर) चलाये जाते हैं, असत्यभाषण के कारण उत्पन्न मुखरोग वाले (होकर) वे बहुत कठिनाई से बोलते हैं।

संस्कृत व्याख्या- गद्यांशेऽस्मिन् महाकविना लक्ष्म्यानुरक्तजनानां राजानाम् वा स्थितिम् कीदृशी भवति इति प्रतिपादयति। तथाहि- यथाहि केचिन् मनुष्याः श्रमवशेन-प्रयासाधिक्येन शिथिलः श्लयोऽदृढः शकुनेः- मयूरस्य अथवा अन्यापि कोऽपि पक्षिणः यो गलःकण्ठः श्रमवशेन अत्यन्तचपलः स्याद् इति कारणात् तदुपमानम्। खद्योतोज्योतिरिङ्गणः तस्य य उन्मेषो- आभासः तद्वत् मुहुर्तं मनोहराभिः मनस्विजनगर्हिताभिः- मनस्विजनाः- पण्डित जनाः तै गर्हिताभिः- निन्दिताभिः एवं विधाभिः संपद्भिः- समृद्धिभिः प्रलोभ्यमानाः- लोभं प्राप्यमाणाः। धनस्य- द्रव्यस्य यो लवो- लेशमात्रम् तस्य लाभः- प्राप्तिः तस्मात् यो अवलेपो- दर्पो तेन विस्मृतं- विस्मृतिं प्राप्तम् जन्म येषां ते तथानेके दोषाः- दूषणानि तैः उपचितेन- व्याप्तेन। रागावेशेन-रागः इच्छाधिक्यः च तेषाम् आवेशः- तन्मयीभावः तेन बाध्यमानाः- पीड्यमानाः। दोषं यदसृग्- रक्तम् तेन अर्थात् तत्रापि रागो भवत्येव इति साम्यम्। विविधाः अनेकाः शब्दादि विषयाः गोचराः तेषां ग्रासेषु- ग्रहणेषु लालसैः लोलुपैः पञ्चभिः यथार्थरूपेण पञ्चसंख्याकैरपि विषयाधिक्यात् अनेकसहस्रसंख्यैः इव अगणितैरिव विद्यमानैः इन्द्रियैः- श्रोत्रत्वगादिज्ञानकरणैः वाक्वाण्यादिकर्मेन्द्रियैः आयास्यमानाः-

स्वस्वशब्दस्पर्शादिविषयेषु निरन्तरगाढप्रवर्तनया खिद्यमानाः। प्रकृत्या-स्वभावेन चञ्चलः- चपलः तस्य भावः तत्ता तया लब्धः प्रसरोऽवकाशो येन एवंभूतेन एकेन मनसा चित्तेन आकुलीक्रियमाणा व्याकुलतां प्रापिता विह्वलताम्- विकलताम् उपयान्ति- उपगच्छन्ति। ग्रहैः इव शनैश्चरादिग्रहैरिव गृह्यन्ते- ग्रहणविषयीक्रियन्ते। भूतैः पिशाचैः अभिभूयन्ते इव- आक्रम्यन्ते इव। मन्त्रैः- देवाधिष्ठातृकैः मन्त्रैः आवेश्यन्ते इव वशीक्रियते इव। सत्वैः- हिंसक जन्तुभिः दुष्टप्राणिभिः वा अष्टभ्यन्ते इव- हठात् अवलमब्यत इव। वायुना- वातव्याधिना विडब्यन्ते इव विचाल्यते इतस्ततो विक्षिप्यन्ते इव। पिशाचैः इव- राक्षसैः इव ग्रस्यन्ते-भक्ष्यन्ते। मदनशरैः- कामदेवबाणैः मर्माहताः ममंस्थलं ताडिताः इव मुखभङ्गसहस्राणि विविधप्रकारमुखभङ्गिमाम् कुर्वते- विदधते। धनोष्मणा धनस्य- द्रव्यस्य उष्मा- तापाः तेन पच्यमानाः- पाकविषयीक्रियमाणा इव विचेष्टन्ते- विविधां चेष्टां कुर्वन्ति। गाढप्रहाराहता- गाढः- तीवो यः प्रहारो लगुडादिंना तेन आहता इव अङ्गानि- हस्तपादादीनि न धारयन्ति धर्तुं न शक्नुवन्ति। कुलीरा इव- कर्कटा इव तिर्यक्तिरश्चनि एव परिभ्रमन्ति- परिभ्रमणं कुर्वन्ति। अधर्मेण- असदाचरणेन भग्ना- भङ्गम् प्राप्त। गतिः गमनं सत्कर्मणि वृत्तिश्च येषां एवंभूताः पङ्गव इव- खञ्जाः इव परेण- अन्यजनेन संचार्यन्ते संचरणशीलं क्रियन्ते। मृषावादो- असत्यभाषणं तस्य विपाकः परिणामस्तेन संजातः- समुत्पन्नो मुखरोगो येषाम् एतादृश इव अतिकृच्छ्रेण- अतिकष्टेन जल्पन्ति- ब्रुवन्ति।

पदार्थमीमांसा- तथाहि- जैसे कि। केचित्- कुछ राजा लोग। श्रमवश शिथिल शकुनिगलपुटचपलाभिः- अधिक श्रम के कारण शिथिल हुए पक्षी के गलप्रदेश की भाँति चञ्चल; श्रमवशेन शिथिलः श्रमवशशिथिलः (तृतीया तत्पुरुष), शकुनेः गलः शकुनिगलः, श्रमवशशिथिलश्चासौ शकुनिगलः तस्य पुटम् तद्वत् चपलम् ताभिः (तत्पुरुषगर्भक कर्मधारय समास)। खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः- जुगुनू के क्षणभङ्गुर चमक की भाँति मुहूर्त (थोड़ी देर) भर के लिये मनोहर; खे द्योतते इति खद्योतः तस्य उन्मेषः खद्योतोन्मेषः (षष्ठी तत्पुरुष मनो) मनोहराः हरन्तीति मनोहराः, मुहूर्तम् मनोहराः खद्योतोन्मेषवद् मुहूर्तमनोहराः ताभिः (कर्मधारय समास)। मनस्विजनगर्हिताभिः- पण्डित (ज्ञानी) लोगों द्वारा निन्दित; मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः तैः गर्हिताः, ताभिः (कर्मधारयगर्भकतत्पुरुष) प्रलोभ्यमानाः- लुभाये जाते हुए (प्र+लुभ्+णिच्+यक् (कर्मवाच्य)+शानच्। धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः- थोड़े

धन की प्राप्ति के अहङ्कार के कारण (अपने) जन्म की अनित्यता को भूल जाते हुए; धनस्य लवः धनलवः, तस्य लाभः धनलवलाभः तस्मादवलेपः धनलवलाभावलेपः, तेन विस्मृतं जन्म यैः ते (बहुव्रीहि समास)। अनेकदोषोपचितेन- वातवित्तादि अनेक दोषों से व्याप्त (रक्तपक्ष) एवं काम क्रोध आदि अनेक दोषों से प्रवृद्ध (रागावेश); अनेके च ते दोषाः अनेकदोषः तैः उपचितेन (उप+चि+क्त+तृतीया तत्पुरुष)। दोषासृजा इव- दूषित रक्त की भाँति; दोषं च तत् असृक् दोषासृक्; तेन इव (कर्मधारय समास) तैः उपचितेन (उप+चि+क्त)। रागावेशेन- लालिमा के आवेश से; रागस्य आवेशः रागावेशः, तेन (षष्ठी तत्पुरुष)। बाध्यमानाः- पीडित होते हुए (बाध्+यक्+शानच्+'आने मुक्' से मुक् का आगम)। विविधविषयग्रासलालसैः- अनेक विषयों के उपभोग की लालसा वाली (इन्द्रियों से); विविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः तेषां ग्रासलालसा येषां तैः (बहु० समास)। पञ्चभिः अपि- पाँच होने पर भी, अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय के होने पर भी। अनेकसहस्रसंख्यैः इव- कई हजार गुणा संख्या की भाँति; अनेकानि च तानि सहस्राणि अनेक सहस्राणि संख्या येषां तैः (बहु० समास) आयास्यमानाः- पीडित किये जाते हुए (आ+यास्+णिच्+यक्+शानच्); यह केचित् सर्वनाम का विशेषण है। प्रकृतिचञ्चलतया। स्वभाव से चञ्चल होने के कारण; प्रकृत्या चञ्चलं प्रकृतिचञ्चलं तस्यः भावः प्रकृतिचञ्चलतया (कर्मवाच्य) लब्धप्रसरेण- प्रसार का अवसर प्राप्त किये हुए से; लब्धः प्रसरः येन तेन (कर्मसमास) एकेनअपि- एक होते हुए भी। शतसहस्रताम् इव उपगतेन- मानो लाखों की संख्या को प्राप्त (मन से)। आकुलीक्रियमाणा- व्याकुल किये जाते हुए; अनाकुलाः आकुलाः क्रियमाणा आकुलीक्रियमाणाः (आकुल+चित्+कृ+यक्+शानच्); केचित् का विशेषण। विह्वलताम्- व्याकुलता को। उपयान्ति- प्राप्त करते है, होती हैं (उप+या+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)।

ग्रहैः- शनैश्चरादि क्रूर ग्रहों के द्वारा। गृह्यन्तेइव- मानों पकड़ लिये जाते हैं। अर्थात् जैसे ग्रहग्रहीत व्यक्ति अशान्त रहता है; वैसे ही लक्ष्मी के द्वारा गृहीत व्यक्ति भी इन्द्रियासक्ति के कारण शान्त नहीं रहता। भूतैः- भूतप्रेतादि के द्वारा। अभिभूयन्ते इव मानो ग्रस्त हो जाते है (अभि+भू+कर्मवाच्य (य), लट्लकार, प्र०पु०, एकवचन)। मन्त्रैः- मारणादिविषय तान्त्रिक मन्त्रों से। आवेश्यन्ते इव- मानों वश में कर लिये जाते हैं (आ+विश+य+लट्लकार, बहु०)। सत्त्वैः- सिंहादि हिंसक जन्तुओं द्वारा या गन्धर्वादि द्वारा। अवष्टभ्यन्ते इव- मानों पकड़ लिये जाते हैं (अव+स्तभ्+य+लट्ल. प्र०पु०,

बहुवचन)। वायुना- वातरोग से। विडम्ब्यन्ते इव- मानों पीडित किये जाते हैं (वि+डम्ब+कर्मवाच्य (य)+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। पिशाचैः- राक्षसों के द्वारा, पिशम् आचमन्ति इति पिशाचाः, तैः। ग्रस्यन्ते इव- मानों ग्रस लिये जाते हैं (ग्रस+यक्+लट्लकार, प्०पु०,बहुवचन)। मदनशरैः- कामदेव के बाणों से। मर्माहताः इव- मानों मर्मस्थल पर चोट खाये हुए से मर्माणि आहताः (कर्मधारय समास)। मुखभङ्गसहस्राणि- मुख की हजारों भावभङ्गिमाएँ; मुखस्य भङ्गाः मुखभङ्गाः (षष्ठी तत्पुरुष) तेषां सहस्राणि। धनोष्मणा- धन की गर्मी से, धनस्य ऊष्मा धनोष्मा, तेन। पच्यमाना इव- पकाये जाते हुए की भाँति (पच्+यकू+शानच्, आने मुक् से मुगागम प्र०,बहुवचन)। विचेष्टन्ते- अनेक प्रकार की चेष्टायें करते हैं, तड़पते हैं। गाढ़प्रहाराहताः इव- तीव्र प्रहारों से घायल की भाँति; गाढश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः, तैः आहताः (आ+हन्+क्त, तत्पुरुष समास) कुलीराः इव- केकड़ों की भाँति तिर्यक्- तिरछे। परिभ्रमन्ति- चक्कर लगाते हैं। अधर्मभग्नगतयः- अधर्म के द्वारा भङ्ग की गयी गति वाले, न धर्मः अधर्मः, तेन भग्नः गतिः येषां ते (बहुव्रीहिसमास)। पङ्गव इव- लँगड़े के समान परेण- दूसरे के द्वारा। सञ्चार्यन्ते- चलाये जाते हैं। (सम्+चर्+य, लट्, प्र०पु०, बहुवचन)। मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगाः इव- मानो झूठ बोलने के कारण उत्पन्न हुए रोग वाले होकर; मृषावाद एव विषय मृषावादविषयम्, तस्य विपाक:तेन सञ्जात:भुखरोग: येषां ते (तत्पुरुषगर्भकबहुव्रीहि, अतिकृच्छ्रेण- अत्यन्त कष्ट से। जल्पन्ति- बोलते हैं (जल्प्+लट्ल. प्र.पु., बहुवचन)।

विशेष-

1 इस गद्यांश में लक्ष्मी के सङ्ग के कारण राजाओं का आचार -व्यवहार कैसा हो जाता है; इसका वर्णन उत्प्रेक्षा के द्वारा किया गया है।

2. इस गद्यांश में 'ग्रहैरिव' से गाढप्रहारहता पर्यन्ति उत्प्रेक्षालङ्कार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'कुलीरा इव' में पूर्णोपमालंङ्कार है। मृषापवादिमुखरोगा इव में निरङ्ग रूपक से क्रियोत्प्रेक्षा है।

3. यहाँ प्रयुक्त सत्त्व शब्द के अनेक अर्थ हैं-

सत्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयोः।

पिशाचदावात्मभावैः बलप्राणेषु जन्तुषु।

(शब्दानुशासन, हेमचन्द्र)

शुकनासोपदेश- सप्तद्वदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलम् उत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कम्पितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदृष्टा इव महामन्त्रैरपि नावबुध्यन्ते। जातुषाभरणानि इव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिताः विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशे महाकविना लक्ष्मीमदपूरितेन राजानः कथं स्वजनान् पीड्यति इति वर्णयन् आह- सप्तद्वदतरवः इव- विषमच्छद् वृक्षा इव कुसुमाकुसुमरजोविकारै:- नेत्ररोगाः अवहेलनाद्योतकनयनभङ्गविशेषा एव रजोविकाराः रजोगुणपरिणामाः तैः तादृशैः आसन्नवर्तिनो- समीपवर्तिनो जनाः शिरः शूलम्- मस्तकव्यथामुत्पाद्यन्ति- जनयन्ति सप्तपर्णकुसुम रजः तेषां ये रजोगुणविकाराः तेषां ये राजेभिः गुणैः विकाराः। विकृतयः तैः, पक्षे- कुसुमरजोविकारैः -पुष्परजोविकृतिभिः शिरः शूलोत्पादकत्वम्। पार्श्ववर्तिनां- समीपस्थां जनाम् शिरः शूलोत्पादकत्वम् इति वैद्यके प्रसिद्धम्। आसन्नमृत्यव इव- आसन्नः- समीपवर्तीमृत्युः-मरणं येषां ते एवं विधाः इव बन्धुजनमपि- स्वजनमपि नाभिजानन्ति- न उपलक्षयन्ति। उत्प्राबल्येन- उत्कुपिते रुग्णे लोचने- नयने येषां ते- तादृशो जनाः इव तेजस्विनः- प्रतापवन्तः पुरुषाम् स्पृहान् नेक्षन्ते- न अवलोकयन्ति, पक्षे तु तेजस्विनो- दिवापत्यादिकान् नेक्षन्ते- लोचनप्रतिघातान्न शक्नुवन्ति। कालदंष्टा- कालेन- महाभुजङ्गेन दष्टां- विक्षता लोका इव महामन्त्रैः अपि- जाङ्गलीप्रभृतिभिः षाङ्गुण्यादिभिः अपि न प्रतिबुध्यन्ते- प्रतिबोधं न प्राप्नुवन्ति। जातुषाभरणानि- लाक्षानिष्पन्नानि आभरणानि- आभूषणानि इव सोष्माणं- तेजस्विनं पुरुषं न सहन्ते- न मृष्यन्ति। दुष्टवारणा इव- मदोन्मत्तादुष्टगजा इव महान्- उत्कृष्टो यो मानोऽहङ्कारः तल्लक्षणो यः स्तम्भः स्थूणा- तेन निश्चलीकृताः स्तब्धतां प्रापिताः सन्तः य स्तम्भः स्थूणां तेन निश्चलीकृता सन्तः उपदेशं- हस्तिपकवचनं न गृह्णन्ति। तृष्णामूर्च्छिताः- तृष्णा एव विषं-गरलं तेन मूर्च्छिता:- भ्रान्ताः कनकमयं- सुवर्णमयमिव सर्वं पश्यन्ति- विलोकयन्ति। इषवः इव बाणाः इव पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः- पानेन- सुरासेवनेन वर्द्धितं तैक्ष्ण्यम्- उग्रता येषां तादृशाः परेण- अन्येन प्रेरिताः- प्रेरणां प्रापिता सन्तः विनाशयन्ति पक्षे तु पानेन- निशातप्रस्तरधर्षणेन

वर्द्धितम् तैक्ष्ण्यम् प्रहारशक्तिः येषां एवंविधा परप्रेरिताः- परेण धनुषा कार्मुकेन वा प्रेरिताः सन्तो विनाशयन्ति- विनाशं जनयन्ति। दण्डविक्षेपैः- दण्डोयष्टिर्भागधेयः च तयोः विक्षेपः- प्रहाराः दुर्दिनानि च तैः दूरस्थितानि अपि- दूरदेशवर्तीन्यपि फलानि इव- सस्यानि इव महाकुलानि- प्रशस्तवंशान् शातयन्ति- पीडन्ति, पक्षे पातयन्ति अपि।

हिन्दी अनुवाद- अपने फूलों के पराग की विकृति (धूलि) से समीपवर्ती लोगों के शिर में पीड़ा उत्पन्न करने वाले सप्तपर्णवृक्ष की भाँति (लक्ष्मीमद से ग्रस्त) वे (राजा) लोग (मानों) रजोगुण से उत्पन्न कुसुम (फूला) नामक रोग के विकारों से अपने समीपस्थ लोगों के सिर में पीड़ा उत्पन्न कर देते हैं। आसन्नमृत्यु (मरणासन्न) व्यक्ति की भाँति (अपने) बन्धुजनों को भी नहीं पहचानते। अत्यधिक कम्पित नेत्र रोग वाले की भाँति तेजस्वियों को भी नहीं देखते। महाविषैले सर्प द्वारा काटे गये व्यक्ति की भाँति सर्पविष दूर करने वाले महामन्त्रों (अथवा श्रेष्ठ मन्त्रणाओं) से भी प्रबोधित (जागरित) किये जाते, लाख (लाक्षा) के बने आभूषणों की भाँति ऊष्मायुक्त (गर्मी या अग्नि) को नहीं सहन करते, विशाल खम्भे में (बाँधकर) निश्चल किये गये दुष्ट हाथी की भाँति (महावत) की शिक्षा (उपदेश) को नहीं ग्रहण करते, तृष्णा (लालसा) रूपी (विषय) विष से मूर्च्छित (मोहग्रस्त) की भाँति सब कुछ सोने से निर्मित सा देखते हैं, मदिरापन से (स्वभाव में) बढ़ी तीक्ष्णता वाले (राजा) सान पर पैना करने से बढी तीक्ष्णता वाले बाण की भाँति दूसरों से प्रेरित होकर (या फेंके जाने पर) विनाश को उत्पन्न करते हैं। (फलपक्ष में) डण्डे के फेंकने से दूरस्थ फलों की भाँति (राजा पक्ष में) दूर रहने पर भी श्रेष्ठ वंशों को दण्डनीति के प्रयोग से नष्ट कर देते हैं।

पदार्थमीमांसा- सप्तच्छद्तरवः इव- सप्तपर्ण वृक्षों की भाँति; सप्त छदाः येषां ते सप्तछदाः (बहुव्रीहि समास), सप्तच्छदाश्च ते तरवः (कर्मधारय समास)। कुसुमरजोविकारैः- रजोगुण के विकाररूप नेत्रभङ्गिमा से अथवा नेत्रों के कुसुमरोग से; रजसः विकाराः रजोविकाराः, कुसुमानि एव रजोविकाराः तैः (कर्मधारय) तरुपक्षे- पुष्पों के पराग के विकार से; कुसुमानां रजांसि कुसुमरजांसि, तेषां विकारैः। पार्श्ववर्तिनां- समीपस्थ या निकटवर्ती लोगों के; पार्श्वे वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनः, तेषाम् (कर्मधारय समास)। शिरः शूलम्- सिर में पीडा या शिरो वेदना। उत्पादयन्ति- उत्पन्न कर देते हैं (उत्+पद्+णिच्, लट्लकार, प्र०पु० बहुवचन)। अर्थात् राजाओं की दूसरों के प्रति अपमान पूर्ण नेत्रभङ्गिमा देखकर समीपस्थ पुरुषों को पीड़ा होती है। आसन्नमृत्यव

इव निकटवर्ती मृत्यु वाले (व्यक्ति) की भाँति; आसन्नः मृत्युः येषां ते (बहुव्रीहिसमास)। बन्धुजनमपि- सगे सम्बन्धियों को भी।न अभिजानन्ति- नहीं पहचानते (अभि+ज्ञा+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। उत्कम्पितलोचना इव- अत्यधिक कम्पित (दुःखी) नेत्रवाले व्यक्तियों की भाँति; उत्कम्पिते लोचने येषां ते (बहुव्रीहि समास)। तेजस्विनः- प्रतापी पुरुषो को, चमकदार वस्तुओं को; तेजः एवाम् अस्ति इति तेजस्विन् (तेजस्+विनि) तान्। न ईक्षन्ते- नहीं देखते। ईक्ष+लट्लकार (आ०), प्र०पु०, बहुवचन)। आशय यह है राजा लोग ईर्ष्या के कारण अपने से प्रतापी पुरुषों को तथा नेत्ररोगी चकाचौंध वाली वस्तुओं को नहीं देखते। कालद्रंष्टा इव- विषैले सर्प द्वारा डसे गये (काटे) व्यक्ति के समान। महामन्त्रैः- सर्प के विष को दूर करने वाले श्रेष्ठ मन्त्रों से, राजा पक्ष मन्त्रियों के अच्छे परामर्शो से; महान्तश्च ते मन्त्राः महामन्त्राः तैः (कर्मधारय समास)। न प्रतिबुध्यन्ते- नहीं जगाये (प्रबुद्ध किये) जाते (प्रति+बुध+यक् (कर्मवाच्य, लटल्०प्र०पु०बहुवचन)। अर्थात् अच्छा परामर्श पाकर भी राजा सन्मार्ग पर नहीं आते और सर्प से डँसा गया व्यक्ति मूर्च्छा नहीं त्यागता। जातुषाभरणानि इव- लाख के बने। आभूषणों की भाँति; जतुषा निर्मितानि जातुषाणि; 'तेन क्रियते' से जतुष से अण् प्रत्यय; जातुषानि च तानि आभरणानि जातुषाभरणानि, तानि इव (कर्मधारय समास)। सोष्माणम्- अग्नि को, ऊष्भा को, तेजास्ववी को सहन नहीं करते।ऊष्माण सह इति सोष्याणम। दुष्टवारणा इव- दुष्ट या बिगड़ैल हाथियों की भाँति। महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः- महान् अभिमान के कारण दुराग्रह से (गलत मार्ग पर होने पर भी) निश्चल बने हुए; महांश्चासौ मानः महामानः (कर्म०) तेन स्तम्भः महामानस्तम्भः तेन निश्चलीकृता (निश्चल+च्वि+कृ+क्त) दुष्टनिवारण पक्ष में- बहुत बड़े खम्भे में बाँधकर निश्चल किये गये; महद् मानः यस्य सः महामानः, महामानश्चासौ स्तम्भः महामानस्तम्भः तेन निश्चलीकृताः (कर्मधारय समास)। न गृह्णन्ति- उपदेश या शिक्षा को नहीं सुनते हैं, (गजपक्ष में) महावत की बात को नहीं मानते। तृष्णाविषमूर्च्छिताः- विषयों की लालसा (तृष्णा) रूपी विष से मोहग्रस्त; तृष्णा एव विषं तृष्णाविषं, तेन मूर्च्छिताः (मूर्च्छ+क्त, बहुवचन, तत्पुरुष समास) कनकमयमिव- स्वर्णनिर्मित की भाँति; कनकेन निर्मितम् कनकमयम्- यहाँ विकार या प्राचुर्य अर्थ में मयट् हुआ है (कनक+मयट्) तत्पुरुष समास। इषवः इव- बाणों की भाँति। पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः- मदिरापान से बढ़ी हुई तीक्ष्णता वाले राजा, सान पर रखे (तराशे गये) जाने के कारण बढ़ी हुई तीक्ष्णता

(नुकीलापन) वाले बाण; पानेन वर्धितम् तैक्ष्ण्यम् येषां ते (बहुव्रीहिसमास)। परप्रेरिताः- दूसरों से प्रेरित होकर; परेण प्रेरिताः (तृ०तत्पुरुष) (प्र०+ईर्+विच्+क्त)। दूरस्थितानि अपि- दूर रहने पर भी; दूरे स्थितानि (स्था+क्त, बहुवचन)। महाकुलानि- श्रेष्ठ वंशों को, महान्ति च तानि कुलानि (कर्मधारय समास)। दण्डविक्षेपैः- दण्डनीति के प्रयोग से (राजा पक्ष), डण्डे के प्रयोग से (फलपक्ष) दण्डस्य विक्षेपैः (षष्ठी तत्पुरुष)। शातयन्ति- नष्ट कर देते हैं (शदलृ+णिच्+प्र०पु०, बहुवचन)।

विशेष-

1. इस गद्यांश में बाणभट्ट ने धन के कारण उन्मत्त व्यक्तियों के निकृष्ट आचरण को श्लिष्टोपमा के माध्यम से प्रदर्शित किया है।
2. यहाँ "सप्तच्छदतख: इव" से लेकर "फलानीव" तक पूर्णोपमालङ्कार का प्रयोग हुआ है।
3. 'तृष्णाविषमूर्च्छिता कनकमयमिव' अंश में निरङ्गरूपक और उत्प्रेक्षा दोनों के होने यहाँ अङ्गाङ्गिभाव सङ्करालङ्कार है।
4. यहाँ कवि ने 'सप्तच्छद' शब्द का प्रयोग करके आयुर्वैदिक ज्ञान दिया है, क्योंकि इस वृक्ष के फूलों के पराग से शिरो वेदना होती है।

शुकनासोपदेश- अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इव अतिरौद्रभूतयः, तैमिरिक। इव अदूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापताकाध्यवसाया इव उपद्रवमुपजनयन्ति। अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसख्यगतामुपगता वाल्मीकतृणाग्रावस्थिता जालबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

संस्कृत व्याख्या- गद्यखण्डेऽस्मिन् कविमहोदयेन लक्ष्मीवन्तः जनानां राजानाम् च विपरीताचरणम् प्रति इङ्गितवान्- अकालकुसुमप्रसवा अकाले- असमये कुसुमप्रसवाः- पुष्पोद्गमा इव मनोहराकृतयोऽपि -मनोहरः- सुन्दरः आकृतयः- स्वरूपाः सन्त अपि लोकविनाशहेतवः। लोकविनाशस्य- जनानां क्षयस्य हेतवो- कारणानि, पक्षे तु लोकविनाशद्योतक कारणानि भवन्ति। यथोक्तम्- "द्रुमौषधिविशेषाणामकाले

कुसुमोद्गमः। फलप्रसवयोर्बन्धं महोत्पातं विदुर्बुधाः।" श्मशानाग्नय श्मशानस्य-प्रेतवनस्य अग्नयः- वह्नय इव अतिरौद्राः- अन्येषां भयोत्पादिका भीषणाः रौद्रा वा भूतयः- सम्पदो पक्षे- अतिक्रूरा भूतिः- भस्म येषु: ते- तादृशाः। तैमिरिका- तिमिर तत्संज्ञक नेत्ररोगेण संसृष्टा तैमिरिकाः इव अदूरदर्शिनाः- दूरं परलोकं न पश्यन्ति पक्षे-अदूरदर्शिनः समीपस्थ वस्तुनः अवलोकने असमर्थाः अर्थात् यथा तिमिराख्यरोगेन पीडिता दूरस्थितानि वस्तूनि न पश्यन्ति तथैव तेऽपि भाविनं दोषं न पश्यन्ति। उपसृष्टा-रतिसंलग्ना गणिका इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः- क्षुद्रैः विटैः नीचजनैः वा अधिष्ठितं- भवनं-गृहम् येषां ते तादृशाः। श्रूयमाणा अपि- आकर्ण्यमाना अपि महापातकादीनाम्- ब्रह्महत्या स्त्रीहत्याआदीनाम् अध्यवसाया- उद्योगा इव उपद्रवम्- चितस्य अशान्तिम् उपजनयन्ति- निष्पादयन्ति। अनुदिवसं- प्रतिदिनम् पापेनाधर्मेण दुरितेन वा आपूर्यमाणाः म्रियमाणा इव आध्मातमूर्तयः- स्थूलदेहा आकृतयो वा भूपतयो भवन्ति। तदवस्थाश्च- सैवावस्था येषां ते तदवस्थाः च् एवं विधाः व्यसनानां- द्यूतादिव्यसनानां शतं तस्य सख्यतां- मित्रताम् उपगताः- प्राप्ताः वल्मीकतृणाग्रावस्थिता- वल्मीकं कीटविशेषेण निस्सारितमृत्तिकाराशिः तस्य तृणाग्रावस्थिता- तृणानि- नरादीनि अग्राणि प्रान्ते भागे अवस्थिता ये जलबिन्दवः तद्वत् पतितं- धर्मच्युतं पक्षे-क्षितौ भ्रष्टं चापि आत्मानं स्वं नावगच्छन्ति पातित्वेन- युक्ततया नावबुध्यन्ते तथैव पतितमपि मनुष्यजन्मन- आत्मानाम् न जानन्ति इत्याशयोऽत्र।

हिन्दी अनुवाद- असमय में हुए पुष्पोद्गम की भाँति मनोहर आकृति वाले (लक्ष्मीसम्पन्न राजा) भी लोकविनाश के कारण बनते हैं, अत्यन्त रौद्र (भयङ्कर) अपवित्र भूति (भस्म) वाली श्मशान की अग्नि के समान (ये लोग) भयङ्कर भूति (ऐश्वर्य) वाले होते हैं, तिमिर नामक नेत्ररोग से ग्रस्त अदूरदर्शी (व्यक्ति) की भाँति (ये) अदूरदर्शी (हिताहित ज्ञान से रहित) होते हैं, (बहिष्कार के योग्य) व्यभिचारी स्त्रियों (वेश्याओं) की भाँति क्षुद्रजनों (अर्थात् नीचपुरुषों, विटों और धूर्तो) से युक्त भवन वाले होते हैं, मृतव्यक्तियों के दाहसंस्कार के समय बजने वाले नगाड़े के शब्द की भाँति उनके नाम सुने जाने पर भी उद्वेग (मानसिक अशांति) उत्पन्न करते हैं, (ब्रह्महत्या आदि) महापातकों के निश्चय के समान उनका ध्यान (विचार) करने पर भी मन में अशान्ति (परेशानी) उत्पन्न होती हैं। (वे) प्रतिदिन मानों पाप से भरे जाते हुए ही स्फीतदेह (फूली हुई) शरीर वाले हो जाते हैं, और उस अवस्था में सैकड़ों व्यसनों

(दुर्गुणों) की मित्रता को प्राप्त होकर बल्मीक (बाँबी) के ऊपरी भाग पर उत्पन्न तृण के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्धुओं के समान अपने पतन (गिरने) को नहीं जान पाते।

पदार्थमीमांसा- अकालकुसुम प्रसवा इव- असमय में होने वाले पुष्पोद्गम की भाँति; न काल इति अकालः (नञ्तत्पुरुष समास) कुसुमानां प्रसवः (षष्ठी तत्पुरुष), अकाले कुसुमप्रसवा इव। मनोहराकृतयो अपि- मनोहर आकृति वाले होने पर भी; मनः हरन्तीति मनोहराः, मनोहरा आकृतयः येषां ते (बहुव्रीहि समास)। लोकविनाशहेतवः- संसार के विनाश के कारण; लोकानां विनाशः लोकविनाशः तस्य हेतवः (ष०त०)। अतिरौद्रभूतयः- अत्यन्त भयङ्कर भूति (भस्म (श्मशान) ऐश्वर्य) वाले (राजा लोग) श्मशानाग्नय इव- श्मशान की अग्नि की भाँति; श्मशानस्य अग्नय इव (षष्ठीतत्पुरुष)। अतिरौद्राः भूतयः येषां ते (बहुव्रीहिसमास)। तैमिरिकाः इव- तिमिरनामक नेत्ररोगी के समान; तिमिरेन संसृष्टा: तैमिरिका (तिमिर+ठक् (इक्) ते (तृतीया तत्पुरुष)। अदूरदर्शिनः- दूर तक न देखने वाले (तिमिर रोगी) अथवा दूरगामी परिणाम का विचार न करने वाले (राजा लोग), दूर द्रष्टुं शीलं येषां ते दूरदर्शिन (दूर+दृश्+णिनि) न दूरदर्शिनः इति अदूरदर्शिनः (नञ् तत्पुरुष)। उपसृष्टा इव- बहिष्कार के योग्य अथवा व्यभिचारग्रस्त वेश्याओं की भाँति; उपसृष्टा (उप+सृज्+क्त+टाप् (आ)। क्षुद्राधिष्ठिता भवना- क्षुद्र, नीच, विटों से व्याप्त भवन वाले; क्षुद्रैः अधिष्ठितानिभनानि यासाः ताः (वेश्यापक्ष); क्षुद्रैः अधिष्ठितानि भवनानि येषां ते राजा पक्ष (बहुव्रीहिसमास)। अमरकोशकार ने क्षुद्र शब्द का अर्थ बताते हुए कहा है- "क्षुद्रा व्यङ्गा नटी वेश्या सरघा (सारङ्गमक्षिका) कष्टकारिका।" इत्यमरः। प्रेतपटहा इव- मृतक के दाहसंस्कार के समय बजने वाले नगाड़ों की भाँति; प्रेतानां पटहाः प्रेतपटहाः ते (षष्ठी तत्पुरुष)। श्रूयमाणाः अपि- सुने जाते हुये भी, श्रवण मात्र से (श्रु+यक्+शानच्, प्रथमा, बहुवचन)। उद्वेजयन्ति- उद्विग्न करते हैं (उत्+विज्, लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। महापातेकाध्यवसाया इव- (किसी के) ब्रह्महत्या आदि महापातकों के निश्चय की भाँति; महान्ति च तानि पातकानि महापातकानि (कर्मधारय समास) तेषाम् अध्यवसायाः (अधि+अव+षो+घञ्) ते (षष्ठी तत्पुरुष)। चिन्त्यमानाः अपि-विचार किये जाने मात्र से भी (चिति+यक्+शानच्)। उपद्रवम्- अशान्ति, मानसिक संताप। उपजनयन्ति- उत्पन्न करते हैं (उप+जन्+णिच्, लट्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन)। अनुदिवसं- प्रतिदिन; दिवसं दिवसं प्रतिदिवसम् (अव्ययीभाव समास)। आपूर्यमाणाः इव- मानो भरे जाते हुए

से (आ+पूर्+णिच्+शानच्, प्रथमा, बहुवचन)। आध्मातमूर्तयः- फूली हुई शरीर वाले, स्थूलकाय; आध्माता (आ+ध्मा+क्त+टाप्) मूर्तिः येषां ते तदवस्था (बहुव्रीहि समास)। तदवस्थाश्च- और उस अवस्था वाले राजा लोग; सा अवस्था येषां ते (बहुव्रीहि समास)। व्यसनशतसख्यताम् (शिकार, जुआ) आदि सैकड़ों व्यसनों (दुर्गुणों) की मैत्री को; व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि येषां सख्यं तस्य भावः व्यसनशतसख्यता, ताम् (बहुव्रीहिसमास)। उपगताः- प्राप्त हुए (उप+गम्+क्त, प्रथमा, बहुवचन। वाल्मीकतृणाग्रावस्थिता- दीमक की बाँबी के ऊपर उत्पन्न तिनकों के अग्रभाग में स्थित वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि, वल्मीकतृणाग्राणि तेषु अवस्थिताः (अव+स्था+क्त, सप्तमी तत्पुरुष) जलबिन्दवः इव- जल की बूँदों को समान: जलस्य बिन्द षष्ठी तत्पुरुष।पतितमपि- गिर हुए भी धर्म से च्युत भी। न अवगच्छति- नहीं जान पाते। (अव+गम् लट्लकार, प्र०पु०बहु०)। जैसे दीमक की बाँबी पर उगे तिनके के अग्रभाग पर गिरी जल की बूँदे नीचे गिरने पर भी मिट्टी के सूखे होने से गिरी नहीं दिखायी देती, वैसे ही राजा लोगों को अपने पतन की अवस्था का बोध नहीं होता।

विशेष-

1. इस गद्यखण्ड में कवि ने लक्ष्मीमद से गर्वित राजाओं और धार्मिको के प्रतिकूल आचरणों को सङ्केतित किया है।
2. इस गद्यखण्ड के 'पापेनेव' अंश में क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है। जिसका लक्षण है- सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।'
3. इस गद्यखण्ड में श्लिष्टोपमा की दर्शनीय है।
4. इस गद्यांश के ' जलबिन्दव इव' में इव उपमा का वाचक है।
5. अकाल में पुष्पोद्गम महान् उत्पात का सूचक है। "कुसुमं स्त्रीरजोनेत्ररोगयोः फलपुष्पयोः।" ऐसा मेदिनी कोशकार कहते हैं।
6. मनुस्मृति में महापातकों की संख्या 5 कही गयी है- ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह। 'इनको करना अथवा इनसे' सम्बन्ध रखना दोनों विनाशकारी है।

शुकनासोपदेश- अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासग्रध्रैः आस्थाननलिनीधूर्तबकैर्द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवावेशयाभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यशःश्लोके इति, तरलतामुत्साह इति।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यखण्डे बाणभट्टेन स्वकीये न धूर्तपाशेन वञ्चकैः राजानाम् कथं प्रतार्यते इति वर्णनम् क्रियते। अपरे तु- अन्ये तु राजानः स्वार्थनिष्पादनपरैः- स्वार्थपूर्तितत्परैः। धनपिशितग्रासगृधैः धनं-द्रव्यम् एव पिशितानि-मांसानि तेषाम् ग्रासे- ग्रहणे गृधैः- दूरदृष्टि: पक्षिविशेषैः यथा धनार्जनपरैः। आस्थाननलिनीधूर्तबकैः- आस्थानं- नृपोपवेशनस्थलम् एव नलिनी- मनोहरत्वात् नानावर्णत्वाच्च कमलिनी तस्याः बकैः- पक्षिविशेषैः अर्थात् यथा धूर्तबकपक्षिणो यथा नलिनीम् अवलम्ब्य तत्पत्राच्छादित मीनान् वञ्चयन्तः झटिति चञ्चुपुटेन गृह्णान्ति तथैव धूर्तजना अपि राजानम् अवलम्ब्य परान् वञ्चयतः तदीयं धनं गृह्णान्ति। द्यूतम्-दुरोदरम् विनोदः- क्रीडामात्रम् इति प्रतिपादनेन परमार्थस्तु द्यूतम्; न चैतद् किञ्चिन्मात्रम् पातकम्भवति इत्याशयोऽत्र। परदाराभिगमनम्- परदाराः- परस्त्रियः तेषाम् अभिगमनम्- संभोगो वैदग्ध्यम् चातुर्यमिति। मृगयां- आखेटः श्रमो- व्यायामः इति। न तु परप्राणव्यापादनजनितं किमपि पातकम् अस्तीति भावः। पानम्- मद्यपानम् एव विलास इति- भो विलासः। परमार्थतस्तु मद्यसेवन महापातकम् इत्याशयः। प्रमत्तताम्-अनवधानता सचिवादीनां विरुद्धव्यवहारे तदनवलोकिता इत्याशयोऽत्र तदेव शौर्यम्-सुभटकृत्यम् इत्यर्थः। स्वदारपरित्यागम्- स्वस्य- स्वकीयस्य दाराः स्त्री तस्याः परित्यागम्- त्यजनम् अव्यसनिता- अनासक्तिभावः इति वस्तुतस्तु स्वदारपरित्यागम् - महापाप प्रदायकः इतिभावः। गुरुवचनावधीरणम्- गुरुः- हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा तस्य वचनं वचः तस्यावधीरणम्- उल्लङ्घनम् अपरप्रणेयत्वम्- अन्यवश्यत्वम् "वश्यः प्रणेयः" इति कोशः अर्थात् गुरुवचनावधीरणेन क्रूरोऽयं प्रभुः इति भिया अपरे-सामन्तादयो वश्यत्वम् प्रतिपद्यन्ते इत्याशयः तेषाम्। अजितभृत्यतां- सेवकानां स्वायत्तता सुखोपसेव्यत्वम् यदृच्छया- व्यवहरणासम्भवाद् अनायाससेवायोग्यत्वम्

वस्तुतस्तु सा विशेषेण हानिकरा इति। नृत्यं- नाट्यम्, गीतम्- गानम्, वाद्यम्- आतोद्यम्, वेश्याभिसक्तिम्- वेश्याः गणिकाः तासु अभिसक्तिम्- अयासक्तिचित्ततां रसिकता- रसाभिज्ञता इति अर्थात् तत्तद्रसग्राहित्वम् गुण एव इति तेषामाशयः; वस्तुतस्तु एते कामजदोषाः। महापराधानाम्- महतो-विशालस्य अपराधस्य- दण्डनीयकार्यस्य अनाकर्णनम्- अश्रवणम् महानुभावता इति महाप्रभावशालित्वम्; परमार्थस्तु अयम् दोष एव। पराभवसहत्वम् -पराभवं- अन्यकृततिरस्कृतत्वम् तत्सहनशीलत्वम्- क्षान्तिः इति; वस्तुतस्तु इदम् जडत्वमेवास्ति। स्वच्छन्दताम्- निरवग्रहतां प्रभुत्वम्- ऐश्वर्यम् इति। देवावमाननम्- देवानाम्- विष्ण्वादिदेवानाम् अवमाननम्- अवहेलनम् महासत्वतेति महाशक्तिमत्ता इति; वस्तुतस्तु बुद्धिराहित्यं दोष एव। वन्दिजनख्यातिः स्तुतिपाठकविहितप्रशंसा एव यशः- कीर्तिः "यशः कीर्तिम् समज्ञा च" इत्यमरः। वस्तुतस्तु सा केवलं वृत्तिदानपुरस्कार एवास्ति इत्यर्थः। तरलताम्- चपलताम् उत्साहः- प्रगल्भता इति; वस्तुतस्त कार्यविनाशकत्वादिदं दोष एव इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवाद- दूसरे (राजा या धनिक)। स्वार्थपूर्ति में लगे हुए धन रूपी मांस को खाने वाले गृधों (गिद्धों) की भाँति, सभामण्डपरूपी कमलिनी के समीपस्थ धूर्त बगुले जैसे और ठगने में कुशल धूर्तगण (इन राजाओं को) इस प्रकार प्रकार समझाते हैं कि द्यूत क्रीडा ही विनोद (मनोरञ्जन) है, परायी स्त्री के साथ सम्भोग (ही) चतुरता है, मृगया (आखेट, शिकार) ही श्रम है, मद्यपान (ही) भोगविलास है, प्रमत्त रहना। (नशे में रहना, किसी बात पर ध्यान न देना ही शौर्य (पराक्रम) है, अपनी स्त्री का परित्याग ही अनासक्ति है, गुरु के वचन की अवहेलना ही स्वाधीनता है, सेवको की स्वाधीनता ही सुखपूर्वक शुश्रूषा है, नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्याओं में आसक्ति ही रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों को न सुनना (उन पर ध्यान न देना) ही महानुभावता है, दूसरे के द्वारा किये गये अपमान को सहन करना ही क्षमा है, स्वच्छन्दता ही प्रभुत्व है, देवताओं का अपमान (ही) महाबलशालिता है, चञ्चलता ही उत्साह है।

पदार्थमीमांसा- अपरे- दूसरे राजा लोग तु- तो यहाँ वस्तुतः 'तु' अव्यय का अर्थ यह दर्शाने के लिये है कि कुछ राजा लोग लक्ष्मी के लोभ में आसक्त है तो; कुछ अन्य राजा या धनिक धूर्तों के चंगुल में फँसे हुए हैं।

स्वार्थनिष्पादनपरैः- स्वार्थपूर्ति में तत्परः, संलग्न; स्वस्य अर्थः स्वार्थः तस्यनिष्पादनम्- (निस्+पद्+णिच्+ल्युट्) स्वार्थनिष्पादनं तस्मिन् पराः, तैः (सप्तमी

तत्पुरुष)। धनपिशितग्रासगृध्रैः धनरूपी मांस को खाने के लिये गृध्ररूप (वाले); धनम् एव पिशितम् तस्य ग्रासः धनपिशितग्रासः तस्मिन् गृध्राः तैः (सप्तमी तत्पुरुष)। आस्थाननलिनीधूर्तबकैः- सभामण्डपरूपी कमलिनी के (समीपस्थ) धूर्त (वञ्चक) बगुलों के रूप वाले; आस्थानम् एव नलिनी तस्याः धूर्तबकाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष समास)। द्यूतम्- जुएँ को। विनोदः इति- मनोरञ्जन है- ऐसा (कहकर दोष को गुण बताना)। परदाराभिगमनम्- दूसरे की स्त्री से सम्भोग को; परस्य दारा परदाराः तेषामभिगमनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास अभि+गम्+ल्युट्। 'दारा' शब्द संस्कृत में नित्य पुल्लिङ्ग और बहुवचनान्त प्रयुक्त होता है। वैदग्ध्यम्- चातुर्य, (विदग्ध+ष्यञ्)। मृगयाम्- आखेट को (मृग्+णिच्+टाप्); मृग्यन्ते पशवः येषां ताम्। पानम्- मद्यपान को, विलासः- विलासिता। प्रमत्तताम्- नशे में चूर रहना; प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता, ताम् (प्र+मद्+क्त+तल्+टाप्)। शौर्यम्- शूरता, वीरता। स्वदारापरित्यागम्- अपनी पत्नी के त्याग को; स्वस्य दाराः स्वदाराः तेषां परित्यागम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अव्यसनिता- व्यसन या आसक्ति का न होना; व्यसनम् (वि+अस्+ल्युट्) अस्तीतिव्यसनिता न व्यसनिता इति अव्यसनिता (नञ् तत्पुरुष)। गुरुवचनावधीरणम्- गुरु के वचनों की अवहेलना, अनादर को; गुरूणां वचनानि गुरुवचनानि तेषाम् अवधीरणम् (षष्ठी तत्पुरुष), अव+धीर+ल्युट्। अपरप्रणेयत्वम्- परेण प्रणेयः परप्रणेयः न परप्रणेयत्वम् इति अपरप्रणेयत्वम् (नञ्तत्पुरुष, प्र+नी+यत्); दूसरों के द्वारा शासित न होना, स्वतंत्रता। अजितभृत्यताम्- अनुचरों को छूट देकर उच्छृङ्खलबनाना; जिताः भृत्याः येन सः (बहुव्रीहि) जितभृत्यः तस्य भावःजितभृत्यता न तजिष्भृत्यता इति अजितभृत्यता, ताम् (नञ् तत्पुरुष समास)। सुखोपसेव्यत्वम्- आसानी से सेवा योग्य होना; सुखेन उपसेव्यः (उप+सेव्+ण्यत्) सुखोपसेव्यः तस्य भावः सुखोपसेव्यत्वम्। नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिम्- नृत्य, गीत, बाजे बजाना, वेश्याओं में आसक्ति; नृत्यं च गीतं च वाद्यम् च वेश्यासु अभिसक्तिञ्च (अभि+सञ्च+क्तिन्, सप्तमी तत्पुरुष)। रसिकता। रसास्वादन, रसः अस्ति अस्या इति ग्राहित्वेन रसिकः, तस्य भावः रसिकता महापराधावकर्णनम्- बड़े-बड़े अपराधों की चर्चा करना या सुनना; महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः तेषम् अवकर्णनम् (षष्ठी तत्पुरुष, अव+कर्ण+ल्युट्)। महानुभावता- बड़प्पन, प्रभावशीलता; महान् अनुभावः (अनु+भू+णिच्+ल्युट्) यस्य सः महानुभावः तस्य भावः, महानुभावता। पराभवसहत्वम्- तिरस्कारणा, अपमान को

सहने को; पराभवं सहते इति पराभव: सहः (परा+भव+सह+अच्), तस्य भावः पराभवसहत्वम् तत् (प्रादि तत्पुरुष समास)। स्वच्छन्दताम्- स्वेच्छाचारिता को; स्वच्छन्दस्यभावः स्वच्छन्दता, ताम्। प्रभुत्वम्- प्रभुता, स्वामित्व। देवावमाननम्- देवताओं के निरादर या अवहेलना को; देवानाम् अवमाननम् (अव+मान्- ल्युट्, षष्ठी तत्पुरुष समास)। महासत्त्वता- महाशक्तिशालिता; महत् चासौ सत्त्वं च महासत्वम्, तस्य भावः (कर्मधारय समास)। बन्दिजनख्यातिम् बन्दिजनों या चारणो के द्वारा की गयी प्रशंसा को; बन्दिश्च ते जनाः तेषां कृतं ख्यातिम्, (ख्या+क्तिन्, षष्ठी तत्पुरुष)। तरलताम्- चञ्चलता को। उत्साहः स्फूर्ति, तेजी (उत्+सह्+घञ्)।

विशेष-

1. इस गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने राजाओं और धनिकों के स्वार्थी धूर्तों या ठगों के जाल में बँधने का स्वाभाविक चित्रण किया है।
2. यहाँ 'द्यूतम्' इस वाक्यांश से जुएँ को निन्दनीय कर्म बताया है। जैसा कि मनुस्मृति कार भी कहते हैं-

   "द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरंमहत्।

   तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।। (मनु. 9/127)
3. सेवकों को वश में न रखना राजाओं का दोष माना गया है। बाणभट्ट ने 'अजितभृत्यतां' से इसी दुर्गुण का सङ्केत किया है। चाणक्यनीति में कहा गया है- "अस्ति पुत्रो वशे य स्य भृत्यो भार्या तथैव च। अभावेऽ-यतिसन्तोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले''
4. इस गद्यांश के 'आस्थाननलिनीधूर्तबकैः' वाक्यांश में रूपकालङ्कार का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है। इसका लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार किया है-

"रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।"

शुकनासोपदेश- अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्या-रोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैधूर्तैः अमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ताः निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव अतिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्यो

चितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यताम् उपयान्ति। आत्मबिडम्बनां चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति।

संस्कृत व्याख्या- महाकविना अस्मिन् गद्यांशे धूर्तजनै: वञ्चनीयानां मूर्खराजानाम् स्वाभाविकं वर्णनम् क्रियते- अविशेषताम्- विशेषाविशेषानभिज्ञताम् अपक्षपातित्वम् इति- अपराधिनोऽपि दोषपर्यालोचनात् तुल्यवृत्तित्वम् गुणः अर्थात् अज्ञतावशात् अपराधिनम्अपि अवमाननम् न करोति तथा गुणिनोऽपि पारितोषिकम् अदत्वा निष्पक्षपातित्वम् दर्शयति। दोषानपि- अपराधानपि गुणपक्षम्- गुणेषु अन्तर्भावं आरोपयद्भि:- आरोपणं कुर्वद्भिः अन्तः- अन्तः करणेषु स्वयमपि आत्मनामपि हसद्भिः- हास्यं कुर्वद्भिः- प्रशंसद्भिः इत्यर्थः तान् राज्ञः अप्रतिहतेन- अयुक्तार्थम्- अयुक्तार्थ-मताङ्गीकरणाद् अत्यन्ताज्ञत्वबोधेन प्रतारणकुशलैः- वञ्चनाकुशलैः धूर्तैः- वञ्चकैः पुरुषैः अमानुषोचिताभिः- देवतायोग्याभिः स्तुतिभिः प्रशंसाभिः प्रतार्यमाणा- वञ्च्यमाना, वित्तमदमत्तचित्ता- वित्तेन- वित्तमदेन- धनाभिमानेन मत्तानि- मदोन्मत्तानि चित्तानि हृदयानि येषां ते तादृशाः मर्त्यस्य- मरणशीलस्य मनुष्यस्यैव धर्माः- व्याधिजरामरणादयो येषां ते तथोक्ताः सन्तोऽपि आत्मानं- स्वीयम्, दिव्यस्य- अलौकिकस्य देवस्यांशेन भागेन अवतीर्णमिव उत्पन्नमिव, अतएव सदैवतमिव, अतिमानुषं- मानवमतिक्रान्तम् उत्प्रेक्षमाणाः- सम्भवयन्त्यः; अतएव प्रारब्धाः अवलोकयितुमुपक्रान्ताः दिव्योचिताः स्वर्गलोकयोग्याः चेष्टाः सङ्कल्पमात्रेण सागरलङ्घनादिव्यापाराः अनुभावाः शापमात्रेण रिपुरमणादिप्रभावाः यैः ते तादृशाः; अतएव सर्वजनस्य- निखिललोकस्य उपहास्यताम्- उपहासयोग्यताम् उपयान्ति- प्राप्नुवन्ति। आत्मबिडम्बनोति- अनुजीविनाजनेन- सेवकजनेन क्रियमाणां- विधीयमानाम् आत्मबिडम्बनाम्- असद्गुणारोपलक्षणाम् अभिनन्द्यन्ति- प्रशंसन्ति। अत्र चकारस्य प्रयोगः पूर्वोक्तानाम् समुच्चयार्थेऽस्ति।

हिन्दी रूपान्तर- अविशेषज्ञता (भले बुरे की जानकारी न रखने) को पक्षपातराहित्य (सब में समान दृष्टि) है; इस प्रकार दोषों को भी गुणों की श्रेणी में अध्यारोपित करते हुए, अन्तः करण (मन) से स्वयं भी (राजा या धनिक) का उपहास करते हुए, ठगने में कुशल धूर्तों के द्वारा अमानुषलोक (देवलोक) के लिये उचित (मनुष्यों के लिये अनुचित) स्तुतियों (प्रशंसावचनों) से ठगे जाते हुए, धन के मद में उन्मत्त चित्त वाले, चेतना से रहित (विवेकशून्य होने, के कारण (धूर्तों द्वारा बतायी गयी

बातों को) यह ऐसा ही है; ऐसा सोचकर स्वयं में मिथ्या (झूठे) अभिमान को आरोपित किये हुए; मर्त्यधर्मा (मरणशील) होते हुए भी स्वयं को मानों दिव्य अंश से अवतीर्ण अथवा देवत्वयुक्त मानते हुए अतिमानुषत्व (मानों अतिमानव हों), इस प्रकार की कल्पना करते हुए, देवताओं के योग्य चेष्टाओं (आचरणों) का आरम्भ किये हुए सब लोगों के उपहास के विषय हो जाते हैं। और सेवकजनों के द्वारा की जाती हुई अपनी प्रवञ्चना (ठगी या झूठी प्रशंसा) का अभिनन्दन (स्वागत) करते हैं (सराहते है)।

पदार्थमीमांसा- अविशेषज्ञताम्- किसी विषय या भले बुरे का विवेक न होने को; जानाति इतिज्ञः (ज्ञा+क) विशेषेण जानातीति विशेषज्ञः तस्य भावः विशेषज्ञता, न विशेषज्ञता इति अविशेषज्ञता, ताम् (नञ्तत्पुरुष)। अपक्षपातित्वम्- निष्पक्षता, पक्षपातराहित्य; पक्षं पातीति पक्षपाती (पक्ष+पत्+णिनि), न पक्षपाती इति अपक्षपाती (नञ्तत्पुरुष) तस्य भावः अपक्षपातित्वम्।

शुकनासोपदेश- मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसदभूतसंभावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कते। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातम्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति। आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादानार्हान्।

संस्कृत व्याख्या- राज्यैश्वर्यम् कथम् मानवे अहंभावमुत्पादयति इति वर्णनम् कविना अस्मिन् गद्यखण्डे कृतवान्- एते राजानः मनसा स्वकीयेन अन्तः करणेन देवतायाः- हरिहरादिदेवताया अध्यारोपणम् आरोपणं तेन विप्रतारणं- वञ्चनं तस्मादिति। असद्भूता- असदूरूपा या संभावना देवस्वरूपत्वेन निश्चयः तेनोपहता-विनष्टबुद्धयः देवत्वाध्यारोपणम् तन्निमित्तम्। अन्तःप्रविष्टम्- अन्तः मध्ये प्रविष्टम्-प्रवेशकृतम् अपरम्-अन्यत् भुजद्वयम्- यस्मिन् एवं विधम् इव आत्मनो बाहुयुगल-स्वकीयम्-भुजयुगं संभावयन्ति संभावनाविषयीकुर्वन्ति। एतेन स्वस्मिन् चतुर्भुजम् ख्यायितम्। स्वललाटे- स्वकीये ललाटदेशे त्वगन्तरिततृतीयलोचनम्- त्वक्कृति तया। अन्तरितं- पिहितं तृतीयं लोचनं यस्मिन् एतादृशं आशङ्कन्ते- आशङ्कां कुर्वन्ति। अर्थात् स्वयंमेव महादेवरूपत्वम् मन्यन्ते निजरूपम् इत्याशयोऽत्रा दर्शनप्रदानमपि-लोकानां स्वकीयं प्रकटनम् अपि अनुग्रहं- प्रसादं गणयन्ति- मन्यन्ते। दृष्टिपातमपि-

दृष्ट्याः- चक्षुषः पातम्- अवलोकनम् अपि उपकारपक्षे- उपकृतिपक्षे स्थापयन्ति- निःक्षिपन्ति। संभाषणमपि- संभाषणम्- जल्पनम् अपि संविभागमध्ये- संविभागः पारितोषिकं दानं वा तन्मध्ये कुर्वन्ति- मन्यन्ते। आज्ञामपि- स्वकीयम् आज्ञाम्- आदेशमपि वरप्रदानम्- अभीष्टप्रदानं मन्यन्ते- जानन्ति। स्पर्शः स्वकीय संश्लेषो अपि पावनम्- पवित्रम् इति आकलयन्ति- आकलनं गणनां वा करोति। मिथ्यामाहात्म्येति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः- मिथ्या- वृथा यो माहात्म्यगर्वो- माहात्म्याभिमानः तेन निर्भरा- आश्रिता भृता वा देवताभ्यो- देवगणेभ्य न प्रणमन्ति- प्रणामं न कुर्वन्ति द्विजातान्- द्विजन्मनः नीपूजयन्ति- पूजां न कुर्वन्ति अर्थात् वस्त्रपात्रादिप्रदानेन न सत्कुर्वन्ति। मान्यान्- माननीयान् न मानयन्ति-सम्मानं न ददते। अर्चनीयान्- अर्चनायोग्यान् नार्चयन्ति- अर्चनां न कुर्वन्ति। अभिवादानार्हान्- अभिवादनयोग्यान् नाभिवादयन्ति- अभिवादनं पादवन्दनं- वा न कुर्वन्ति। गुरून् हिताहितप्राप्तिपरिहारस्योपदेष्टन्न गुरून् नाभ्युत्तिष्ठन्ति- अभ्युत्थानं न कुर्वन्ति।

हिन्दी अनुवाद- (पूर्वोक्त दुर्गुणों से युक्त ये राजा) मन से (स्वयं में) दैवभाव (देवत्व) के आरोप रूपी वञ्चना के कारण न उत्पन्न होने वाली मिथ्या संभावना (देवरूप में निश्चय) से नष्टबुद्धि होकर अपने बाहुयुगल को मानों अन्दर छिपी हुई दो भुजाओं वाले (देवता) की भाँति समझने लगते हैं (अर्थात् अपने ऊपर चतुर्भुज भगवान् विष्णु होने का आरोप कहते हैं)। अपने ललाट (माथे) पर त्वचा के भीतर छिपे हुए तृतीय नेत्रवाला होने की कल्पना करने लगते हैं (अर्थात् मैं त्रिनेत्रधारी शिव हूँ, ऐसी आशंका करते हैं। किसी को दर्शन देने को भी (अपनी) कृपा मानते हैं। (किसी पर) अपने दृष्टिपात करने को (दृष्टि डालने को) भी उपकार की श्रेणी में रखते हैं। (किसी को) आज्ञा देने को भी वरदान देना समझते है। (अपने) स्पर्श (छूने) को भी पवित्र करने वाला समझते हैं। और झूठे बडप्पन के गर्व से भरे हुए (ये राजा) देवताओं को भी प्रणाम नहीं करते हैं, द्विजातियों (ब्राह्मणों) की भी पूजा नहीं करते, सम्माननीय लोगों का सम्मान नहीं करते हैं। पूजनीयों की अर्चना नहीं करते हैं। प्रणाम करने योग्य (लोगों) का अभिवादन नहीं करते हैं। गुरुजनों के लिये (उन्हें देखकर भी) खड़े नहीं होते हैं।

पदार्थ मीमांसा- मनसा- मन से, कल्पना से। देवताध्यारोपणविप्रतारणात्- देवत्व के आरोप रूपी वञ्चना के कारण, देवस्य भावः देवता, तस्य अध्यारोपणम् (अधि+आ+रुह+ल्युट्) तदेव विप्रतारणा (वि+प्र+तृ+णिच्+युच्+टाप्) तस्मात् (पञ्चमी

तत्पुरुष)। असम्भूत सम्भावनोपहताः- उत्पन्न न हो सकने वाली मिथ्या संभावना (देवतात्व का निश्चय) से नष्टबुद्धि वाले (राजा), न सम्भूता असम्भूता (नञ्+सम्+भू+क्त+टाप्। असम्भूतसम्भावनया(सम्+भू+णिच्+युच्+टाप्) उपहताः (उप+हन्+क्त, तृतीया तत्पुरुष)। अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयमिव- मानों अंदर छिपी हुई दो भुजाओं वाले, द्वौ अवयवौ तस्य तत् द्वयम् (द्वि+तयप्, अयचादेश। यहाँ 'संख्याया अवयवे तयप्' से 'तयप्' प्रत्यय हुआ है। द्वयम् भुजयोः भुजद्वयम्, अन्तःप्रविष्टम् अपरं भुजद्वयम् यस्य तत् (बहुव्रीहिस०) आत्मबाहुयुगलम्- अपनी दोनों भुजाओं को। सम्भावयन्ति- सम्भावना, कल्पना करते है (सन्+भू+युच्, लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। त्वगन्तरितृतीयलोचनम्- त्वचा में छिपे हुए तीसरे नेत्र वाले त्वचा अन्तरितं तृतीयं लोचनंयस्मिन् तत् (कर्मधारय समास)। स्वललाटम्- अपने मस्तक को। आशङ्कन्ते- आशङ्का करते हैं अर्थात् स्वयं को शिव समझने लगते हैं (आ+शङ्क+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)N.P दर्शनप्रदानम् अपि- (किसी को) अपने दर्शन देना भी, दर्शनस्य प्रदानम् (प्र०पु०+दा+ल्युट्, षष्ठी तत्पुरुष)। अनुग्रहम्- कृपा, अनुग्रह (अनु+ग्रह+अच्) 'नन्दिग्रहिः'सूत्र से। गणयन्ति- समझते हैं (गण्+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०बहुवचन)।

अपि- दृष्टिपात अर्थात् किसी को देखने को भी (दृष्टि+पात्+घञ्)। उपकारपक्षे- उपकार की श्रेणी में, उपकारस्य पक्षे (षष्ठी तत्पुरुष)। स्थापयन्ति- स्थापित करते, रखते हैं, (स्था+लट्लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन)। सम्भाषणमपि- वार्तालाप करने को भी गुणपक्षम्- गुणों की कोटि (श्रेणी) में रखना, गुणानां पक्षम् (षष्ठी तत्पुरुष) अध्यारोपयद्भिः- आरोपित करते हुए, अध्यारोपित करते हुए (अधि+रुह+णिच्+शतृ, तृतीया, बहुवचन)। अन्तः- अन्तःकरण में, मन में। विहसद्भिः- उपहास करते हुए (वि+हस्+शतृ+तृतीया, बहुवचन)। प्रतारणकुशलैः- ठगने या प्रवञ्चना में चतुर, कुशान् लाति इति कुशलः, प्रतारणे कुशलाः, तैः (तृतीया तत्पुरुष समास)। अमानुषलोकोचिताभिः- देवलोक के लिये उचित अर्थात् मनुष्य लोक के लिये अनुचित, मानुषलोकानाम् उचिताः मानुषलोकोचिताः, न मानुषलोकोचिताः अमानुषलोकोचिताः, ताभिः (नञ्+तत्पुरुष.)। प्रतार्यमाणाः- ठगे जाते हुए (प्र+तृ+णिच्+यक्+शानच्, प्रथमा, बहुवचन)समास। वित्तमदमत्तचित्त- धन के मद में उन्मत्त चित्त वाले, वित्तस्य मदः वित्तमदः तेन मत्तं चित्तं येषां ते (बहुव्रीहि समास)। निश्चेतनतया- चेतनारहित,

विवेकहीनता के कारण, निष्क्रान्ता चेतना यस्मात् निश्चेतनः, तस्य भावः निश्चेतनता, तया। आरोपितालीकाभिमानाः- मिथ्या अभिमान को आरोपित किये हुए, आरोपितः (आ+रुह्+णिच्+क्त) अलीकः अभिमानः यैः ते (अभि+मन्+घञ्, बहुव्रीहि समास)। मर्त्यधर्माणोऽपि- मरणधर्मा या जन्म-मृत्यु रूप धर्म वाले होते हुए भी, मर्त्या धर्मा येषां ते मर्त्यधर्माणः (बहुव्रीहि समास) मर्तम् अर्हन्तीति मर्त्या (मृत+अर्हार्थे यत्) (मर्त्य+धर्म+अनिच्) 'धर्मादनिच्' इस पाणिनि नियम से। दिव्यांशावतीर्णमिव- मानों दिव्य अंश से अवतीर्ण की भाँति, दिव्यम् अर्हन्तीति दिव्याः, दिव्यश्च ते अंशाः दिव्यांशः, तैः अवतीर्णम् (अव+तृ+क्त, तृतीया तत्पुरुष)। सदैवतम् इव- मानो देवत्व से युक्त हो, दैवतेन सह सदैवतम् (अव्ययीभाव समास) अतिमानुषम्- सामान्य मानव से बढ़कर, दिव्य, अतिक्रान्तम् मानुषम् (प्रादिसमास)। आत्मानमुत्प्रेक्षमाणः- अपने को मानते हुए, समझते हुए (उत्+प्र+ईक्ष्+शानच्, प्र०ए०) प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः- देवोचित चेष्टाओं और हावभाव को प्रारम्भ किये हुए, प्रकर्षेण आरब्धा (प्र+आ+रभ्+क्त+टाप्), दिव्यानाम् उचितः दिव्योचिताः, प्रारब्धा -दिव्योचिता चेष्टा अनुभावाश्च यैः तैः (बहुव्रीहि समास)। सर्वजनस्य- सब लोगों की। उपहास्यताम्- उपहास के विषय का पात्र, उपहसितुं योग्यः उपहास्यः, तस्य भावः उपहास्यताम्- ताम् (उप+हस्+ण्य+तल्+टाप्)। उपयान्ति- प्राप्त हो जाते हैं (उप+या+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन) अनुजीविना जनेन- सेवकजनों से, अनुजीवन्तिति अनुजीवी, तेन (अनु+जीव्+णिनि, तृतीया, एकवचन)। क्रियमाणाम्- की जाती हुई (कृ+यक्+शानच्+टाप्, द्वितीया, एकवचन आत्माविडम्बनाम्- मिथ्याप्रशंसा, प्रवंचना को। अभिनन्दन्ति- अभिनन्दन करते हैं (अभि+नन्द+लट्लकार, प्र.पु., बहुवचन)।

विशेष- 1. इस गद्यांश में बाणभट्ट ने धूर्तों से ठगे जाते हुए मूर्ख राजाओं का स्वाभाविक वर्णन किया है।

2. यहाँ 'अवतीर्णमिव', 'सदैवतमिव' वाक्यांशों में इव'उत्प्रेक्षावाचक है। जिसका लक्षण है "सम्भावनमाथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। को भी संविभागमध्ये- पुरस्कार देने

विशेष- 1. इस गद्यांश में महाकवि बाणभट्ट ने झूठी प्रशंसा से गौरवान्वित राजाओं का स्वाभाविक चित्रण किया है।

2. 'अन्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिव' में क्रियोत्प्रेक्षा स्वयं में विष्णुत्व की और 'त्वगन्तरित.' वाक्यांश में शिवत्व की व्यञ्जना होने से वस्तुध्वनि है। आशय यह है कि

विष्णु की गुप्तकालीन मूर्तियों में कन्धे से कोहनी तक दो ही भुजाएँ दिखायी गयी है, दो भुजाओं में दो भुजाओं के छिपे होने की मान्यता उस समय भी प्रचलित थी, यहाँ उसी का कवि ने सङ्केत किया है।

शुकनासोपदेश- अनर्थकानायासान्तरितोपभोग सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैकलव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशं, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावतेयति।

संस्कृत व्याख्या- मूर्ख राजानः गुरुजनान् अवमाननं कृत्वा चाटुकाराणाम् अभिनन्दनं करोति इत्याशयेन कविराह- अनर्थकमिति। अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखम् -अनर्थको- निष्फलो य आयासः प्रयास श्रौतस्मार्तकर्मणि क्लेशः तेन हेतुना अन्तरितं- बाधितम् उपभोगसुखम्- उपभोगः वनितादिकः तज्जनितं सुखं यस्य इति कृत्वा विद्वज्जनम्- ज्ञानिनम् उपहसन्ति- उपहासं कुर्वन्ति। जरावैकलव्यप्रलपितम् इति। जरायाः वैक्लव्यं विकलता या तेन प्रलपितम्- जल्पितम् इति कृत्वा वृद्धानां स्थविराणामुपदेशं शिक्षां पश्यन्ति। जानन्तीत्याशयः। आत्मप्रज्ञापरिभव इति आत्मनः-स्वस्य या प्रज्ञा- बुद्धिः (प्रज्ञा स्यात् शेमुषी मतिः इत्यमरः) तस्याः परिभव- पराभव अति मत्वा सचिवोपदेशाय- प्रधानामात्यशिक्षाया असूयन्ति- असूयाम् कुर्वन्ति। हितवादिने- यथास्थितिवादिने कुप्यन्ति- कोपं कुर्वन्ति। अत्र "क्रुधद्रुहत्यादिनियमेन सचिवोपदेशाय हितवादिन इत्यत्र सम्प्रदानसंज्ञात्वात् चतुर्थीविभक्तिः।"

एतादृशं पुरुषं सर्वथास्तुवन्ति इत्याशयेनाह- तम् इति। तं- पुरुषं सर्वथा- सर्वप्रकारेण अभिनन्दन्ति- अभिनन्दनं करोति। तमालपन्ति- तं पुरुषम् आलापम् कुर्वन्ति। तं- पुरुषं पार्श्वे- समीपे कुर्वन्ति- रक्षन्ति। तं- पुरुषं वर्धयन्ति- संवधर्यन्ति। तेन- पुरुषेण सह सुखम् यथा स्यात् तथा अवतिष्ठन्ति- अवस्थानं कुर्वन्ति। तस्मै- पुरुषाय ददति- धनं प्रयच्छति तं- पुरुषं मित्रताम्- सख्यभावम् उपजनयन्ति- निष्पादयन्ति। तस्य- पुरुषस्य वचनं शृण्वन्ति- वाक्यं शृण्वन्ति। तत्र वर्षन्ति- तस्मिन् पुरुषाय पुनः

पुनः दानं कुर्वन्ति। तं- पुरुषम् बहुमन्यन्ते- अत्यधिकं मानं ददति। तम् पुरुषम् आप्तां- विश्वासपात्रताम् आपादयन्ति- प्रतिपादयन्ति। यः पुरुषः अहर्निशम्- अहोरात्रम् अनवरतम्- निरन्तरम् विगतमन्यकर्तव्यम् यस्य एवम्भूत उपरचिताञ्जलिम्- निरन्तरम् विगतमन्यकर्तव्यम् यस्य एवम्भूत उपरचिताञ्जलिम्- उपरचिता- संयोजिता अञ्जलिम्- करयुगलम् अधिदैवतमिव- इष्टदेवतामिव स्तौति- स्तुतिं करोति। यो वेति। यो माहात्म्यम् तद्गुणानां वर्णनालक्षणम् उद्भावयन्ति- उद्भावनां करोति।

हिन्दी अनुवाद- ये बूढे लोग निरर्थक परिश्रम से विषयोपभोगजनित सुख से रोकते हैं- ऐसा मानकर विद्वान् लोगों का उपहास करते हैं। वृद्धों अर्थात् अनुभवी बड़े-बूढ़ों के उपदेश (शिक्षा) को वृद्धावस्था की विकलता से उत्पन्न बकवास (प्रलाप) है- ऐसा मानते है (देखते हैं)। सचिवों (मन्त्रियों) के उपदेश के लिये यह 'अपनी बुद्धि का अपमान है' ऐसा ईर्ष्याभाव समझते हैं। हितकर वचन बोलने वाले पर क्रोध करते हैं। (ये राजा) सब प्रकार से (चाटुकार) पुरुष का अभिनन्दन (स्वागत) करते हैं। उसके साथ बातचीत करते हैं। उनको बगल में बैठाते हैं, उन्हीं का संवर्धन करते हैं। (अर्थात् धनादि देकर उसे प्रोत्साहित करते हैं)। उनके साथ मित्रता करते हैं, उसकी बातों को (ध्यान से) सुनते हैं, उस पर (उपहारों की) वर्षा करते हैं। उसी को बहुत मानते हैं, उसी को विश्वासपात्र मानते हैं, जो रात-दिन निरन्तर हाथ जोड़े हुए, अन्य कर्तव्यों को छोड़कर उनकी स्तुति करता है अथवा उनकी महिमा (बड़ाई) का गान करता है।

पदार्थमीमांसा- अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखम्- ये (शास्त्रोक्त कर्मों में) निरर्थक परिश्रम से विषयोपभोग से उत्पन्न सुख को रोकते हैं, अविद्यमानः अर्थः अनर्थः स एव अनर्थकः (अनर्थ+स्वार्थे कन् बहुव्रीहि), अनर्थकश्चासौ आयासः अनर्थकायासः (कर्मधारय समास), विषयाणाम् उपभोग विषयोपभोगः तस्य सुखम् (षष्ठी तत्पुरुष) विषयोपभोगसुखम्, अनर्थकायासेन अन्तरितं विषयोपभोगसुखम् येन, तम् (बहुव्रीहि समास)। विद्वज्जनम्- विद्वान् लोगों को, विद्वाश्चासौ जनः, तम् (कर्मधारय समास)। उपहसन्ति- उपहास करते हैं (उप+हस्+लट्+प्र०पु० बहुवचन)। जरावैक्लव्यप्रलपितम्- वृद्धावस्था की विकलता के कारण किया गया प्रलाप, जरायाः वैक्लव्यम् जरावैकलव्यम्, तेन प्रलपितम् (प्र+लप्+क्त, तत्पुरुष) वृद्धजनोपदेशं- वृद्धपुरुषों की शिक्षा को, वृद्धाश्च ते जनाः वृद्धजनाः तेषाम् उपदेशं, (षष्ठी तत्पुरुष समास)। आत्मप्रज्ञापरिभवः- अपनी बुद्धि का अपमान, आत्मनः प्रज्ञा आत्मप्रज्ञा

तस्याः परिभवः (परि+भू+अप्, षष्ठी तत्पुरुष समास)। सचिवोपदेशाय- मन्त्रियों के उपदेश (सत्परामर्शों) को, सचिवानाम् उपदेशः तस्मै (षष्ठी त०) असूयन्ति- द्वेष करते हैं। यहाँ "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रतिकोपः" पाणिनि नियम से 'सचिवोपदेशाय' में चतुर्थी का प्रयोग हुआ है। हितवादिने- हितकर बात कहने वाले के लिये, हितं वदतीति हितवादी (हित+वद्+णिनि) तस्मै।

कुप्यन्ति- क्रोध करते हैं (कुप्+लटलकार,प्र०पु० बहुवचन)। पूर्वोक्त नियम से 'हितवादिने' में भी चतुर्थी का प्रयोग हुआ है। सर्वथा- सब प्रकार से (सर्व+थाल् प्रकारवचनेथाल्' से) तम्- 'इस चाटुकार की अभिनन्दन्ति- प्रशंसा करते हैं (अभि+नन्द्+लट्लकार, प्रथम पु०, बहुवचन)। तम्- उस पुरुष से। आलपन्ति- बातचीत करते हैं (आ+लप्, प्र०पु०बहुवचन)। तं- उस (व्यक्ति) को। पार्श्वे- पास में (बगल में) कुर्वन्ति- करते हैं, बैठाते हैं। तं- उस (व्यक्ति) को। संवर्धयन्ति- बढ़ावा देते हैं, प्रोत्साहन देते हैं। तेन सह- उस (पुरुष) के साथ सुखम्- सुखपूर्वक, प्रसन्नमन से अवतिष्ठन्ते- बैठते हैं, रहते हैं (अव+स्था+आत्मनेपद, लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। तस्मै- उसी (व्यक्ति) को ददति- (धनादि) देते हैं, (दा+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन) तम्- उसी से एक मित्रताम्- मित्रता को (मित्र+तल्)। उपजनयन्ति- बढ़ाते हैं, उत्पन्न करते हैं (उप+जन्+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। तस्य- उसी के, वचनम्- वचनों को, बातों को शृण्वन्ति- सुनते हैं, ध्यान देते हैं, (श्रु+लट्लकार, प्र०पु०, बहुवचन)। तत्र- उसी (व्यक्ति) पर। वर्षन्ति- (धनादि की) वर्षा करते हैं, देते हैं। तं- उस को बहु मन्यन्ते- बहुत (अधिक)। मन्यन्ते- (उत्कृष्ट या श्रेष्ठ) मानते हैं। तम् उस (व्यक्ति) की आप्तताम्- विश्वास पात्रता को, आप्तस्य भावः आप्तता, ताम् - (आप्+क्त+तल्+टाप्)। आपादयन्ति- प्रतिपादित करते हैं, विश्वासपात्र बनाते है। अहर्निशम्- रात-दिन, अहश्च निशा च अहर्निशम् (द्वन्द्व समास)। अनवरतम्- निरन्तर। उपरचिताञ्जलिः- अञ्जलि बाँध कर, हाथ जोड़े हुए, उपरचितः अञ्जलिः येन सः (बहुव्रीहि समास, उप+रच+क्त)। विगतान्यकर्तव्यः- अन्य कार्यों को छोड़कर, विगतम् अन्यत् कर्तव्यम् यस्य सः (बहुव्रीहिसमास)। अधिदैवतमिव- इष्ट या उपास्य देवता की भाँति, देवताम् अधिकृत्य (अव्ययीभाव समास)। स्तौति- स्तुति करता है, प्रशंसा करता है। यः वा -अथवा जो। महात्म्यम्- महिमा को, बडप्पन को। उद्भावयति- प्रकट करता है, कल्पना करता है (उद्+भू+णिच्+लट्लकार, प्र०पु०, एकवचन)।

विशेष- 1. इस गद्यांश का आशय यह है कि चाटुकारों या झूठी प्रसंसा करने वाले व्यक्तियों पर ऐसे प्रशंसा प्रेमी राजा कृपादृष्टि बना रखते हैं।

2. यहाँ प्रत्येक वाक्य में प्रतीयमान उत्प्रेक्षालङ्कार प्रयुक्त है।

शुकनासोपदेश- किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसंधानपरामन्त्रिणः उपदेष्टार: नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभिप्रयोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।

संस्कृतव्याख्या- विभूतिमतां राजानाम् दोषान्तरं वर्ण्यते कविनाऽस्मिन् गद्यांशे- किंवेति। तेषां विभूतिमताम् वा अथवा कि साम्प्रतम्- उचितम् युक्तं येषां- विभूतिमताम् अतिनृशंसप्रायः- अनिर्दयबहुल उपदेशः- शिक्षया निर्घृणम्- निर्गता घृणा दया यस्माद् एतादृशं। कौटिल्यशास्त्रं कौटिल्यरचितम् अर्थशास्त्रम् यामलादिप्रमाणम् इति। अभिचारक्रियाः- मारणउच्चारनमोहनादि - तान्त्रिकक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः- क्रूरा-कठोरा एका -अद्वितीया प्रकृतिः स्वभावो येषाम् एवं विधाः पुरोधसः- पुरोहिताः गुरवो-गुरवो धर्मोदेशकाः। पराभिसंधानपराः- परेषाम् अन्येषाम् अभिसंधानम् निरोधः तत्र पराः तत्पराः मन्त्रिणः- सचिवाः अमात्या उपदेष्टारः- शिक्षादातारः। नरपतिसहस्रोज्झितायां- नरपतीनां यत्सहस्रं तेन भुक्ता चासाबुज्झिता त्यक्तो चेति एवं विधायाः लक्ष्म्याम् आसक्तिः- अनुरागाधिक्यम्। मारणात्मकेषु- मारणम्- व्यापादनम् एव आत्मा- स्वरूपं येषां तथाविधेषु शास्त्रेषु अभियोगः- उद्यमः व्यापारो वा। सहजप्रेमार्द्रहृदया- सहजं- स्वाभाविकं यत्प्रेम-नार्दं क्लिन्नं हृदयं येषाम्'च ते अनुरक्ता अनु+रञ्ज+क्त) एतादृशा भ्रातरः सहोदरा उच्छेद्या: मूलतः उन्मूलनीयाः।

हिन्दी अनुवाद- अथवा उन लोगों (राजाओं) के लिये क्या उचित हो सकता है? जिनके लिये अतिनृशंसता से भरे हुए उपदेशों के कारण निर्दय कौटिल्य के द्वारा विरचित अर्थशास्त्र (ही) प्रमाण है। मारणादि अभिचार क्रियाओं को करने वाले क्रूर प्रकृति (स्वभाव) वाले पुरोहित ही जिनके गुरु हैं, दूसरों को धोखा देने में लगे हुए मन्त्री (ही) जिनके उपदेशक (शिक्षा प्रदाता) हैं। हजारों राजाओं द्वारा उपभोग करके छोड़ी गयी लक्ष्मी में ही (जिसकी) आसक्ति है, मारण आदि रूप बताने वाले शास्त्रों में जिनका परिश्रम है और स्वाभाविक (सहज) प्रेम से आर्द्रहृदय वाले (स्नेहसिक्त) भाई (जिनके

लिये) उच्छेदनीय (नष्ट करने योग्य) हैं।

पदार्थमीमांसा- तेषां वा- अथवा उन राजाओं का। किम् साम्प्रतम्- कौन सा कार्य उचित है। येषां- जिनकी दृष्टि में, जिनके लिये। अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्- अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण उपदेशों के कारण निर्दय, दयारहित, नृन् शंसतीति नृशंसः अत्यन्तः नृशंसः अतिनृशंसः, अतिनृशंसः प्रायः यस्यसः अतिनृशंसप्रायः (बहुव्रीहि समास), स चासौ उपदेशः अतिनृशस- प्रायोपदेशेन निर्घृणम् (तृतीया तत्पुरुष)। कौटिल्य शास्त्रम्- कौटिल्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ, कुटिलस्य भावः कौटिल्यम्, कौटिल्यम् अस्यास्तीति कौटिल्यः (कौटिल्य+अच्) तस्य शास्त्रम् (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रमाणम्- प्रमाण, यथार्थज्ञान का साधन (प्र+मा+ल्युट्)। अभिचार क्रियाःअभिचार अर्थात् मारण-मोहन उच्चाटनादि तांत्रिक क्रियायें, अभिचारस्य क्रियाः अभि+चर्+घञ्, षष्ठी तत्पुरुष समास)। क्रूरैकप्रकृतयः- केवल क्रूरस्वभाव वाले, क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते (बहुव्रीहि समास)। क्रूरैकप्रकृतयः- केवल क्रूरस्वभाववाले, क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते (बहुव्रीहि समास)। पुरोधसः- पुरोहित, पुरः धातीति पुरोधसः (पुरस्+धा+असि)। पराभिसन्धानपराः- दूसरों को धोखा देने में तत्पर; परेषाम् अभिसन्धाने पराः (अभि+सम्+धा+ल्युट्, तत्पुरुष समास)। उपदेष्टारः- उपदेशदेने वाले, परामर्शदाता (उप+दिश+तृच्+प्र बहुवचन)। नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिताया हजारों- राजाओं के द्वारा उपभोग करके छोड़ी गयी, नराणां पतयः (ष०त०) नरपतीनां सहस्राणि नरपतिसहस्राणि, तैः भुक्ताः (भुज्+क्त+टाप्) चासौ उज्झिता च (उज्झ+क्त+झूटाप्) नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिता, यस्याम् (तत्पुरुष समास)। आसक्तिः- अनुराग, प्रेम (आ+सञ्च+क्तिन्)। मारणात्मकेषु- मारण आदि स्वरूप बताने वाले (तन्त्रशास्त्रों) में, मारणम् आत्मा येषां तेषु (बहुव्रीहिसमास)। शास्त्रेषु -तन्त्रादि शास्त्रों में। अभियोगः- अभिरुचि (अभि+युज्+घञ्)। सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता- स्वाभाविक प्रेम से आर्द्र (सिक्त) हृदय वाले, स जायते इति सहजं, सहजं च तत्प्रेम सहजप्रेम, तेन आर्द्रम् हृदयम् येषां ते सहजप्रेमार्द्रहृदयाः (बहुव्रीहिसमास) ते च अनुरक्ताः (अनु+रञ्ज+क्त)। उच्छेद्याः- नष्ट करने योग्य, उखाड़ फेकने योग्य,

विशेष- 1 इस गद्यांश में बाणभट्ट ने दुष्ट राजाओं के आचार- व्यवहार का वर्णन किया है।

2. 'कौटिल्यशास्त्रम् प्रमाणम्, 'तथा' भ्रातर उच्छेद्याः पद के प्रयोग से यहाँ यह

ध्वनित होता है कि राजाओं के लिये कौटिल्य का अर्थशास्त्र अधिक हितकारी नही है। दुष्ट राज्य प्राप्ति के लिये भाइयों का भी वध कर देते हैं।

शुकनासोपदेश- तदेवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपलभ्यसे सद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः, यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसेऽकुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः,न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न बिडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशे महाकविना- राज्यशासनकार्ये विषयासङ्गकुसङ्गाभ्याम् निवृत्तिसत्कर्मणि प्रवृत्तिः विधेया राजानम् इति आहः। तदेवमिति। तत् -तस्मात् कारणात् -एवम् अनेन प्रकारेण पूर्वोक्तस्वरूपबहुले अतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे- अतिकुटिलाः अतिवक्राः कष्टदायिन्यिः चेष्टाः कायव्यापाराः तासां सहस्रेण दारुणे- भीषणे, राज्यतंत्रे- राज्यशासने अस्मिन्- अनुभूयमाने महामोहकारिणी- महामौढ्यजनके यौवने- तारुण्ये काले कुमार! हे कुमार! चन्द्रापीड तथा- तेन प्रकारेण प्रयतेथाः- प्रयत्नं कृथाः यथा- येन प्रकारेण जनैः लोकेन न उपहस्यसे- न उपहासं क्रियसे, साधुभि:- सज्जनैः न निन्द्यसे- निन्दां न क्रियसे, गुरुभिः- हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्ट्रभिः आचार्यैः नोपालम्भसे- उपालम्भं न क्रियसे।न तिरस्क्रियसे वा, विद्वद्भिः- पण्डितजनैः न शोच्यसे- शोकविषयं न क्रियसे, यथा च येन प्रकारेण च विटैः असदाचरणकर्तृभिः सेवकैः धूर्तैः वा न प्रकाश्यसे- न प्रकटीक्रियसे। अकुशलैः- अनाचारादिभिः यथा न प्रतार्यसे- न प्रतारणाविषयीक्रियसे, भुजङ्गैः- धूर्तैः गणिकापतिभिः नास्वाद्यसे- गणिकार्थं द्रव्यवितरणद्वारा नोपभोज्यसे, सेवकवृकैः- सेवकाः- परिचारका एव वृकाः ईहामृगाः तैः नावलिप्यसे न अनिष्टे प्रसज्य से अर्थात् राज्यान्नावलुण्ठ्यसे। धूर्तैः- शठैःन वञ्च्यसे न वञ्चनां क्रियसे, वनिताभिः- स्त्रीभिः न प्रलोभ्यसे- न प्रलोभनविषयीक्रियसे, लक्ष्म्या-श्रिया न विडम्ब्यसे- न विडम्बनायुक्तः क्रियसे अर्थात् न हीयते। मदेन- आधिपत्यजनिताहङ्कारेण न नृत्यसे- नृत्यं न क्रियसे, मदनेन- मनसिजेन न उन्मत्तीक्रियसे- न चित्तविप्लवतामापद्यसे, विषयैः- इन्द्रियार्थैः नाक्षिप्यसे- न एकान्तमाकृष्यते, रागेन- स्नेहादिना उत्कटभोगेच्छया वा विकृष्यसे- आकर्षणं न क्रियसे, सुखेन- आनन्देन नापह्रियसे- न परित्यज्यसे।

हिन्दी अनुवाद- इसलिये; इस प्रकार के (पूर्वोक्त) अत्यन्त कुटिल, कष्टदायक हजारों चेष्टाओं के कारण भीषण इस राज्य शासन में और अत्यन्त मोहकारी युवावस्था में हे कुमार! (चन्द्रापीड) ऐसा प्रयास करो; जिससे लोगों के द्वारा तुम्हारा उपहास न किया जाय, साधुजनों के द्वारा निन्दित न हो, गुरुओं के द्वारा धिक्कारे न जाओ, मित्रों के द्वारा (तुम्हें) उलाहना न प्राप्त हो, विद्वानों के द्वारा (तुम्हारे लिये) शोक न किया जाय और जिस प्रकार से धूर्तो (लम्पटों) के द्वारा (उनके मित्र के रूप में) प्रकाशित न किये जाओ, अकुशलजनों के द्वारा भी (तुम्हें) धोखा (वञ्चना) न दिया जाय, कुटिलजनों (धूर्तों, भुजङ्गों) के द्वारा (तुम्हारा) आस्वादन न किया जाय, (क्षुद्र) सेवक रूपी भेडियों के द्वारा (तुम) नष्ट न किये जाओ, धूर्तों के द्वारा ठगे न जा सको, स्त्रियों के द्वारा प्रलोभित न किये जा सको, लक्ष्मी के द्वारा (तुम) हास्यास्पद न बनाये जाओ, (राज्यशासन के) मद (अहङ्कार) से नचाये न जाओ, कामदेव के द्वारा उन्मत्त न किये जाओ, विषय भोगों के द्वारा आकृष्ट न किये जाओ, राग (विषया सक्ति) के द्वारा खींचे न जाओ (और) सुख के द्वारा (तुम्हारा) अपहरण न किया जा सके (अर्थात् सुख तुम्हे पथभ्रष्ट न कर दे, ऐसा प्रयास करो)।

पदार्थमीमांसा- तद्- इसलिये, इस कारण। एवम्- इस प्रकार के (पूर्वोक्त)। अतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे- अत्यन्त कुटिल तथा कष्टदायक हजारों चेष्टाओं से भयानक; अतिशयेन कुटिलम् अतिकुटिलम्, चेष्टानां सहस्रंचेष्टा सहस्रम् एव प्रायः कुटिलं कष्टं च तत् अतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रम्, तेन दारुणे (तत्पुरुष समास)। राजतन्त्रे- राजशासन में, शासन व्यवस्था में; राज्यस्य तन्त्रम्, तस्मिन् राजतंत्रे (षष्ठी तत्पुरुष)। महामोहकारिणी- अत्यधिक मोह या अज्ञानता उत्पन्न करने वाले, महाँश्चासौमोहः महामोहः (कर्मधारय समास), महामोहं करोतीति महामोहकारी, तस्मिन् (उपपदतत्पुरुष)। अस्मिनयौवने- इस युवावस्था में। तथा प्रयतेथाः- इस प्रकार का प्रयास करना यथा- जिस प्रकार से। जनैः- लोगों के द्वारा नोपहस्यसे- उपहास के पात्र न बनों (न+उप+हस्+यक्, लट्लकार, मध्यम पु., एकवचन)। साधुभिः- सज्जनों के द्वारा न निन्द्यसे- निन्दित न होओ, निन्दा के पात्र न बनों (निन्द+यक् कर्मवाच्य लट्लकार, म०पु०, एकवचन)। गुरुभिः- गुरुजनों के द्वारा न धिक्रियसे- धिक्कार न प्राप्त करो; (न+धिक्+कृ+कर्म. लट्लकार, म०पु०, एकवचन) सुहृद्भिः- मित्रों के द्वारा; शोभनं हृदयं येषां यहाँ हृदय का ह्रद आदेश हुआ है। नोपालम्भ्यसे- उपालम्भ

(उलाहना) न प्राप्त करो; (न+उप+आ+लभ्+यक् कर्म० म०पु०, एकवचन)। विद्वद्भिः- विद्वानों के द्वारा न शोच्यसे- शोक का विषय न बनो (न+शुच्+यक्+कर्मवाच्य, लट्लकार,म०पु०एक०) विटैः- धूर्तों या कामीजनों के द्वारा, दुर्जनों द्वारा। यथा च- और जिस प्रकार से। न प्रकाश्यसे- प्रकाशित न किये जाओ (न+प्र+काश् (दीप्तौ)+यक्, कर्म.लट्ल.म०पु०एक०) अकुशलैः- अकुशलजनों के द्वारा, न प्रतार्यसे- ठगे न जाओ, धोखा न खाओ। भुजङ्गैः- भुजङ्ग अर्थात् कुटिल या दुष्ट वेश्याजीवियों के द्वारा। न आस्वाधसे- आस्वाद्यन न किये जाओ, लूटे न जाओ (न+आ+स्वद्+यक्, लट्लकार, म०पु०, एक०)। सेवकवृकैः- (दुष्ट) सेवकरूपी भेडियों के द्वारा। नावलुप्यसे- नष्ट न कर दिये जाओ (न+अब+लुप्+यक् लट्लकार, म०पु०, एकवचन)। धूर्तैः- धूर्तों, मक्कारों के द्वारा। न वञ्च्यसे- ठगे न जाओ, धोखा न खाओ (न+वञ्च्+यक् म.पु., एक.) वनिताभिः- स्त्रियों के द्वारा। न प्रलोभ्यसे- सौन्दर्य से लुभाये न जाओ (प्र+लुभ्+यक्, म.पु.) लक्ष्म्या- लक्ष्मी के द्वारा। न विडम्ब्यसे- अपमानप्रद उपहास के पात्र न बनो (न+बिडम्ब+यक्, कर्म. लट्लकार, म०पु०, एकवचन)। मदेन- (राज्यशासन से उत्पन्न) मद से। न नर्त्यसे- नचाये न जाओ (न+नृत्+यक्, लट्लकार, म०पु०, एकवचन)। मदनेन- कामदेव द्वारा या कामवासना के द्वारा। न उन्मत्तीक्रियसे- उन्मत्त या पागल न बानये जाओ (न+उत्+मद्+च्वि=उन्मन्ती+कृ+यक्, कर्म०,लट्लकार, म०प्र०, एक.)। विषयैः- (इन्द्रिय के विषय भोगों के द्वारा। न आक्षिप्यते- खीचे या फँसाये न जाओ अर्थात् विषयाकर्षण में न फँसो (न+आ+क्षिप्+यक्, कर्मवाच्य, लट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन)। रागेण- विषयासक्ति से। नावकृष्यसे- खीचे या आकृष्ट न किये जाओ (न+अव+कृष्+यक्, कर्म०, लट्लकार, म०पु०,एको०)। सुखेन- सुख के द्वारा, सांसारिक सुख के द्वारा। नापह्रियसे- अपहृत न किये जाओ अर्थात् पथभ्रष्ट न हो।

विशेष- 1. इस गद्यखण्ड में 'नोपहस्यसे जनैः' से 'नापह्रयसे सुखेन' तक सभी वाक्यों की क्रिया कर्मवाच्य में है, फलतः कर्ता में तृतीया और कर्म के अनुसार क्रिया में एकवचन प्रयुक्त हुआ है।

2. यहाँ- 'सेवकवृकैः' में रूपकालङ्कार है-जिसका लक्षण है 'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।' (साहित्यदर्पण)

3. इस गद्यांश के द्वारा बाणभट्ट ने यह दर्शाया है कि राजशासन बहुत ही टेढा

और कष्टप्रद है। इसमें विषयासक्ति और कुसङ्गति से दूर रहकर ही व्यक्तिसफल हो सकता है। कालिदास ने भी अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अध्याय के 5वें श्लोक में यही कहा है।

शुकनासोपदेश- कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुण-सन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमपि अभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्।

संस्कृत व्याख्या- गद्यांशेऽस्मिन् महाकविना बाणभट्टेन स्वोपदेशानाम् उपसंहाररूपेण राज्यलक्ष्म्यां प्रभावं वर्णितवान्- 'कामं भवान्'इत्यादिना। कामं- यद्यपि पर्याप्तम् भवान् प्रकृत्यैव- स्वभावेन एव धीरः- धैर्यवान् असि, पित्रा च- पितातारापीडेन अपि समारोपितसंस्कारः सर्वविषयज्ञानं यत्र स तादृशः, तथा धनानि- सम्पत्तयः तरलहृदयम्- तरलं- चञ्चलं हृदयं चेतो यस्य सः तम् अप्रतिबुद्धम्- बोधरहितं च पुरुषं धनानि- द्रव्याणि मदयन्ति- मदम् जनयन्ति। अहं तु न तथा अनुनयामि इत्यर्थः। तथापि- यथा उपदेशः सार्थकः स्यात् तदभिप्रायेणाहम् वदामि; यद्यपि अनुपदेश्यत्वेऽपि भवद्गुणैः- भवतः शौर्यादिभिः गुणैः यः संतोषः- मनः तुष्टिः माम् शुकनासम् एवं- पूर्वोक्तप्रकारेण मुखरीकृतवान् तादृग्वाग्व्यापारे प्रवर्तितवान्। इदमेव च- अहार्यविपरीतशङ्कानिवृत्तये अयमुपदेशः अस्ति; अतएव इदं-पूर्वोक्तम् पुनः पुनः- बारम्बारम्- अभिधीयसे- कथ्यसे मया विद्वांसमपि पण्डितमपि सचेतनमपि- ज्ञानवन्तमपि महासत्वमपि- महाबलशालिनमपि अभिजातमपि- कुलीनमपि धीरमपि- धैर्यवन्तमपि, प्रयत्नवन्तमपि- उद्योगयुक्तमपि पुरुषं- मानुषम् इयं लक्ष्मीः, एषा लक्ष्मी: खलीकरोति- सन्मार्गान् स्खलनम् प्रापयति। अत्र सर्वत्र अपिशब्दप्रयोगः कैमुतिकन्यायेनास्ति। अर्थात् पूर्वोक्तगुणसम्पन्नोऽपि एवं करोति; अन्यस्य का वार्ता इत्याशयोऽत्र। यतः इयं दुर्विनीता- अपगतविनया लक्ष्म्या जनानां एवंकरोति इत्यर्थः। सर्वथा- सर्वप्रकारेण भवान्- त्वम् पित्रा- जनकेन कल्याणैः- मङ्गलैः क्रियमाणं- विधीयमानं नवयौवनस्य यो राज्याभिषेकः तल्लक्षणं मङ्गलम् अनुभवतु-

अनुभवविषयीकरोतु। पूर्वपूरुषैः- पूर्वजैः ऊढाम्- कुलक्रमेणागतां परम्पराया ताम् धुरम्- राज्य भरम् उद्वह- उद्वहनं करोतुं। द्विषतां- शत्रूणां शिरांसि- उत्तमाङ्गानि अवनमय विनम्रं कुरु। स्वबन्धुवर्गम्- स्वजनसमुदायम् उन्नमय ऊर्ध्वीकुरु।

हिन्दी अनुवाद- भले ही (यह विदित है कि) आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं, और पिता के द्वारा समारोपित संस्कारों से युक्त हैं और धन चञ्चल हृदयवाले अज्ञानी (चेतनाहीन) को मतवाला (अहङ्कारी) बनाते है, तथापि आपके गुणो के प्रति संतोष ने मुझे इस प्रकार मुखर (वाचाल) बनाया है; और (मैं) यही बात पुनः पुनः (आपसे) कहा जाता है (अर्थात् बारम्बार मैं आपसे यही कहता हूँ)। (क्योंकि) विद्वान् को भी बुद्धिमान् को महाबलशाली कुलीन, धीर और प्रयत्नशील (परिश्रमी) पुरुष को यह दुष्ट आचरण वाली लक्ष्मी दुष्ट (खल) बना देती है। पिता के द्वारा किये जाते हुए नवीन यौवराज्याभिषेक रूपी मङ्गल को आप सब प्रकार से अनुभव करो (आनन्द उठाओ)। वंशपरम्परा से आये हुए (और) पूर्व पुरुषों के द्वारा धारण किये गये (राज्य के) भार को वहन करो। शत्रुओं के शिरों (मस्तकों) को झुकाइये। अपने बन्धुजनों के शिरों (मस्तक) को उठाइये (उन्नत करिये)।

पदार्थमीमांसा- कामम्- भले ही, मानते हैं। भवान्-आप। प्रकृत्या एव- स्वभाव से ही। धीरः- धैर्यवान् हैं। पित्रा च-और पिता (तारापीड) के द्वारा। समारोपितसंस्कारः- भली भाँति दिये गये संस्कार से युक्त हैं; समारोपिताः (सम्+आ+रूह+णिच्+क्त) संस्काराः यस्मिन् सः (बहुव्रीहिसमास)। धनानि-धन-सम्पत्तियाँ। तरलहृदयम्- चञ्चल हृदय वाले को; तरलं हृदयं यस्य तम् (बहुव्रीहिसमास) अप्रतिबुद्धम्- ज्ञानही, नासमझ; न प्रतिबुद्धम् इति अप्रतिबुद्धम् (नञ् तत्पुरुष, प्रति +बुध्+क्त)। मदयन्ति- मतवाला (अहङ्कारी) बनाते हैं (मदी हर्षे+णिच्, लट्ल०प्र०पु०बहु०) तथापि- वैसा न होने पर भी, फिर भी। भवद्गुणसन्तोषः- आपके (विनय आदि) गुणों के प्रति (मेरे मन में) उत्पन्न संतोष नें; भवतः गुणाः भवद्गुणाः (षष्ठी तत्पुरुष) तैः सन्तोषः (तृतीया तत्पुरुष)। माम्- मुझको। एवम्- इस प्रकार विस्तार से कहने के लिये। मुखरीकृतवान्- मुखर या वाचाल बनाये हैं; अमुखरं मुखरं कृतवान् इति मुखरीकृतवान् (मुखर+च्वि+कृ+क्तवतु)। इदमेव- यह ही। अभिधीयसे- बार-बार कहा जाता है (अभि+धा, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, लट्लकार, म०पु०, एक०)। (क्योंकि) विद्वांसमपि- विद्वान् पुरुष को भी, सचेतनमपि- ज्ञानसम्पन्न को भी। महासत्वमपि- महाबलशाली, साहसी को भी, महत् सत्वं यस्य

तम् (बहुव्रीहि) ।अभिजातमपि- कुलीन व्यक्ति को भी (अभि+जन्+क्त)। धीरमपि- धैर्यवान् को भी। प्रयत्नवन्तमपि- परिश्रमी को, प्रयासशील को भी (प्र+यत्+नङ्+मतुप्)। इयं- यह दुर्विनीता- उद्दण्ड दुष्टा (दुर्+वि+नी+क्त+टाप्)। लक्ष्मी:- राज्यलक्ष्मी: खलीकरोति- दुष्ट बना देती है (खल्+च्वि+कृ+लट्लकार, प्र०पु०, एक०)। पित्रा-पिता के द्वारा, पिता तारापीड के द्वारा। क्रियमाणम्- किये जा रहे; (कृ+यक+शानच् नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्- नवीन युवराज पद के अभिषेक रूप मङ्गल को; युवा चासौ राजा युवराज (कर्मधारय समास), तस्य कर्म यौवराज्यम् (युवराज+ष्यञ्) नव च तद् यौवराज्यं नवयौवराज्यम्, तस्मिन् अभिषेकः (अभि+षिच्+घञ्, सप्तमी तत्पुरुष समास)। सर्वथा- सब प्रकार से (सर्व+थाल) 'प्रकारवचनेथाल्' सूत्र से। अनुभवतु- अनुभव करो, उपभोग करो (अनु+भू+लोट्लकार, प्रथमपुरुष. एकवचन)। कुलक्रमागताम्- कुलपरम्परा से प्राप्त; कुलस्य क्रमः कुलक्रमः (षष्ठी तत्पुरुष); तस्माद् आगतम् (आ+गम्+क्त), ताम्। पूर्वपुरुषैः- पूर्वजों के द्वारा; पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः (कर्मधारय समास) तैः। ऊढाम्- धारण किये जाते हुए, वहन किये जाते हुए (वह्+क्त+टाप्)। धुरम्- भार को, राज्यभार को। उद्वह- वहन करिये (उत्+वह+लोट्लकार, म०पु०, एक०)। द्विषताम्- शत्रुओं के। शिरांसि- शीश या मस्तक को। अवनमय- झुकाइये, विनम्र बनाइये (अव+नम्+लोट्लकार, म०पु०,एकवचन)। स्वबन्धुवर्गम्- अपने बन्धुबान्धवों या हितैषियों के समुदाय को; स्वबन्धूनां वर्गम् (षष्ठी तत्पुरुष)। उन्नमय- उन्नत करो, ऊँचा उठाइये (उत्+नम्+लोट्लकार, म०पु०, एक.)।

विशेष- 1. इस गद्यखण्ड में शुकनास ने अपनी शिक्षाओं का निष्कर्ष समझाते हुए चन्द्रापीड को बताया है कि राज्यलक्ष्मी विद्वान्, कुलीन, ज्ञानवान् धैर्यवान् लोगों को भी पथभ्रष्ट कर देती, हैं अतः सावधानीपूर्वक लक्ष्मी का उपभोग करना चाहिए। इस गद्यांश से चन्द्रापीड के धैर्य, संस्कार, बुद्धिमत्ता उद्योगशीलता और स्थिरचित्तता एवं पराक्रम का वर्णन कवि के द्वारा किया गया है।

शुकनासोपदेश- अभिषेकानन्तरं च प्रारब्ध दिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तदीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापम् आरोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशोभवति इत्येतावत् अभिधायोपशशाम। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भि: प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव,

पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तम् स्थित्वा स्वभवनं जगाम।

संस्कृत व्याख्या- अस्मिन् गद्यांशे कविना तासपीडं दिग्विजय सम्बन्धिनीं कथा मुक्त्वा प्रेरणाम् दत्तवान्-अभिषेकेति। अभिषेकानन्तरं यौवराज्यस्य अभिषेकानन्तरं- यौवराज्यस्य अभिषेकानन्तरम् प्रारब्धदिग्विजयः- प्रारब्धः प्रस्तुतो दिग्विजयो येन सः परिभ्रमन्- प्रतिदिशं गच्छन् विजितामपि- स्वायत्तीकृतामपि सप्तद्वीपभूषणां- सप्तसंख्याका द्वीपा जम्बू आदयो भूषणम् यस्या एवंविधां बसुन्धराम् पुनः द्वितीयबारं विजयस्व- विजयं कुरु। प्रतापम्- कोशदण्डजं तेजः आरोपयितुं रिपुषु प्रवर्तयितुम् ते-तव अयमेव कालः- समयः अस्ति समागतो वा। तस्य फलं प्रदर्शयति- आरूढप्रतापो- आरूढः- लब्धः प्रतापः- प्रतापो यस्य एवंभूत राजा त्रैलोक्यदर्शीव योगी इव सिद्धादेशो- सिद्धो निष्पन्नः आदेशः आज्ञा यस्य स तथा त्रिकालदर्शी अपि सिद्धादेशो भवति। यथा वदति तथैव भवति इत्येतावत्- इतिपरिसमाप्तौ एतत् पर्यन्तम् अभिधाय- कथयित्वा उपशशाम शुकनासो विरतवाग्व्यापारो बभूव।

उपशान्तवचसि- उपरतवाग्व्यापारे तस्मिन् शुकनासे सति चन्द्रापीडः ताभिः- पूर्वोक्ताभिः उपदेशवाग्भि- शिक्षावचनैः प्रक्षालित इव- धौत इव उन्मीलित इव- विकसित इव, स्वच्छीकृत इव-स्वच्छ-निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव- अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव- भूषित इव, पवत्रीकृत इव- पावीनीकृत इव, उद्भासित इव- उद्दीपित इव प्रीतहृदयो- प्रीतं सन्तुष्टं हृदय चेतो यस्य एवंभूतो मुहूर्तम् घटिकाद्वयम् स्थित्वा-अवस्थानं कृत्वा स्वभवनं- निजसद्यम् आजगाम आययौ।

हिन्दी अनुवाद- और अभिषेक के पश्चात् दिग्विजय प्रारम्भ किये हुए तुम्हारे (दिग्विजय के लिये) घूमते हुए तुम्हारे पिता द्वारा जीती गयी सप्तद्वीपपर्यन्त पृथ्वी पर पुनः विजय प्राप्त करो। यह तुम्हारा (शत्रुओं पर) प्रताप स्थापित करने का काल (उचित समय) है। '(क्योंकि' स्थापित किये गये प्रताप वाला राजा त्रैलोक्यदर्शी (योगी) की भाँति सिद्ध (सफल) आदेश वाला हो जाता है- इस प्रकार इतना (पूर्वोक्त वचन) कहकर (मन्त्री शुकनास) चुप हो गये मन्त्री शुकनास के चुप हो जाने पर चन्द्रापीड उन उपदेश वचनों से मानों धोकर निर्मल किये गये, प्रफुल्लित (विकसित) की भाँति, मानों स्वच्छ किये गये, मानों रगडकर माँजे गये, मानों स्नान किये हुए, मानों (चन्दनादि से) लिप्त किये गये, मानों अलङ्कारों से भूषित किये गये, मानों पवित्र किये गये, मानों प्रदीप्त किये गये की भाँति प्रसन्न हृदय होकर कुछ देर ठहर कर अपने भवन में आ गये।

पदार्थमीमांसा- अभिषेकानन्तरें- राज्याभिषेक के पश्चात् अभिषेकस्य अनन्तरम् (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रारब्धदिग्विजयः (चारों) दिशाओं को जीतने का कार्य आरम्भ किये हुए; दिशां विजयः दिग्विजयः, प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः (बहुव्रीहि समास, प्रा+रभ्+क्त)। परिभ्रमन्- घूमते हुए (परि+भ्रम्+शतृ)। पित्रा-पिता के द्वारा। विजितामपि- जीती गयी, वश में की गयी (वि+जित्+क्त+टाप्)। वसुन्धराम्- पृथ्वी को। वसून् धारयतीति वसुन्धरा (कर्मधारय समास) ताम् पुनर्विजयस्व- पुनः जीतो, स्वाधीन करो (वि+जि, लोट्लकार, म.पु., एक.) यहाँ 'विपराभ्यांजेः' इस नियम से विउपसर्ग से 'जि' धातु को संयुक्त होने से आत्मने पद में क्रिया का प्रयोग हुआ है। ते- तुम्हारा। अयंकालः- यह (अभिषेक के पश्चात् का) समय। प्रतापमारोपपितुं अपने प्रताप (तेज) को आरोपित (स्थापित) करने का समय है। प्रतापम् आरोपयितुं (आ+रुह+णिच्+तुमुन्)। हि- क्योंकि, निश्चय ही। आरूढप्रतापः- अपने प्रताप को स्थापित करने वाला राजा; आरूढः प्रतापः यस्य सः। (बहुव्रीहिसमास) आ+रुह+क्त त्रैलोक्यदर्शी इव तीनों लोकों को देखन् वाले (योगी) की भाँति; त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (द्विगु समास), स एव त्रैलोक्यम्, त्रैलोक्यं पश्यतीति त्रैलोक्यदर्शी (त्रैलोक्य+दृश्+णिनि) उपपद समास। सिद्धादेशः सफल आदेश वाला, कहा हुआ वचन पूरा होने वाला; सिद्धः आदेशः यस्य सः (बहुव्रीहि) इति- ऐसा। यहाँ 'इति' समाप्तिसूचक है। एतावत- इतना ही (पूर्वोक्त उपदेश) अभिधाय- कहकर (अभि+धा+ल्यप्)। उपशशाम- (मन्त्री शुकनास) शान्त हो गये, चुप हो गये; (उप+शम्, लिट्लकार, प्र०पु०, एक.)। पशान्तवचसि शुकनासे- शुकनास के इतना कह लेने पर, चुप हो जाने पर यहाँ 'यस्य च भावे भावलक्षसेणम्' सतिसप्तमी हुई है। ताभिः- उन। उपदेशवाग्भिः- उपदेश या शिक्षाबन्धनों से। प्रक्षालित इव- मानो धोया हुआ सा (प्र+क्षाल+कत्त)। उन्मीलित इव- मानों विकसित किया हुआ सा। उद्+मील्+क्त)। स्वच्छीकृत इव- मानों स्वच्छ किया हुआ सा (स्वच्छ+च्वि+कृ+क्त)। निर्मृष्ट इव- मानो माँजा गया सा (निर्+मृज+क्त)। अभिषिक्त इव- मानों स्नान कराया गया सा (अभि+षिच्+क्त)। अभिलिप्त इव मानों (अंगरागादि का) लेप किया गया सा (अभि+लिप्+क्त)। अलङ्कृत इव- मानों आभूषणों से सजाया या हो (अलम् कृ+क्त)। पवित्रीकृत इव- मानों पवित्र किया हुआ सा (पवित्र+च्वि+कृ+क्त)। उद्भासित इव- मानों प्रदीप्त हुआ सा (उद्+भास+क्त (णिच्)। प्रीतहृदयः- प्रसन्नचित्त प्रीतं हृदयं यस्य सः (बहुव्रीहि समास)। मुहूर्तम्- क्षणभर के लिये, थोड़ी देर। स्थित्वा- रुक कर

(स्था+क्त्वा)। स्वभवनम्- अपने भवन को। आजगाम्- आ गया (आ+गम्+लिट्लकार, प्र०पु०, एक०)। यहाँ 'गम्' धातु के योग के कारण 'भवनम्' में द्वितीया हुई है।

विशेष- इस गद्यखण्ड में मन्त्री ने राजव्यवहार के लिये उपयोगी शिक्षा देने के पश्चात् दिग्विजय की प्रेरणा दी है। यहाँ आरुढप्रतापो वाक्य के द्वारा यह लौकिक सत्य कहा गया है कि वंशपरम्परा से प्राप्त पैतृक सम्पत्ति की शत्रुओं से रक्षाके लिये अपने तेज का प्रदर्शन करना चाहिए।

2. 'प्रक्षालित इव' से 'उद्भासित इव' पर्यन्त वाक्यांश में उत्प्रेक्षालङ्कार की छटा दर्शनीय है। जिसका लक्षण है- "सम्भावनामथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।" (साहित्यदर्पण)

शुकनासोपदेश- ततः कतिपयदिवसापगमे च राजा स्वयमुत्क्षिप्तमङ्गलकलश :सह शुकनासेन पुण्येऽहनि पुरोधसा सम्पादिताशेषराज्याभिषेकमङ्गलम् अनेकनरपतिसहस्रपरिवृतः, सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यः, सर्वाभ्यो नदीभ्यः, सर्वेभ्यश्च सागरेभ्यः समाहृतेन सर्वौषधिभिः, सर्वफलैः, सर्वमृद्भिः, सर्वरत्नैश्च परिगृहीतेन आनन्दवाष्पजलामिश्रेण मन्त्रपूतेन वारिणा सुतमभिषिषेच। अभिषेकसलिलार्द्रदेहञ्च तं लतैव पादपान्तरं निजपादपममुञ्च्यन्त्यपि तारापीडं तत्क्षणमेव सञ्चक्राम राजलक्ष्मीः।

संस्कृत व्याख्या- ततः- तदनन्तरम् कतिपयदिवसापगमे- कियत् दिनातिक्रमे राजा- तारापीडः स्वयम्- आत्मनैव उत्क्षिप्तः- अभिषेकार्थे ऊर्ध्वकृती: - मङ्गलकलशः- मङ्गलघटः येन सः तादृशः शुकनासेन। प्रधानसचिवेन्न सह- सार्धम् पुण्येऽहनि- पवित्रे वासरे,पुरोधसा- पुरोहितेन सम्पादिताशेष.- सम्पादितानि राज्यभिषेकमङ्गलम् विहितानि अशेषाणि- समग्रानि राज्याभिषेकस्य मङ्गलानि- मङ्गलकार्याणि देवार्चनादीनि यस्य तं तादृशं सुतं-पुत्रम् अनेकनरपतिसहस्रैः नानादेशादागतैः सामन्तसमूहैः परिवृतः परिवेष्टितः, सर्वेभ्य- निखिलेभ्यः तीर्थेभ्यः- प्रयागहरिद्वारादिभ्यः, सर्वाभ्यः सकलाभ्यः नदीभ्यः गङ्गादिसरिद्भ्यः ,सर्वेभ्यः- समस्तेभ्यः सागरेभ्यः- समुद्रेभ्यः समाहृतेन- आनीतेन, सर्वौषधिभिः वचादिराज्याभिषेकद्रव्यै: सर्वफलैः- समस्तवृक्षफलैः पुष्पैः पत्रैश्च, सर्वमृद्भिः- समस्ततीर्थोत्पन्न- मृत्तिकाभिः सर्वरत्नै: सर्वमणिभिः परिगृहीतेन- मिलितेन आनन्दवाष्पजलमिश्रेण- आनन्दजनिताश्रुजलसंपृक्तेन, मन्त्रपूतेन- पुरुषसूक्तादिमन्त्रैः

पवित्रेन वारिणा- जलेन सुतं- पुत्रं चन्द्रापीडं अभिषिषेच- स्नापयाञ्चकार। राज्यलक्ष्मीः- राज्यश्रीः लता-व्रततिः यथा निजपादपम्- आश्रिततरुम् इव तारापीडभूपतिं तारापीडाख्यनरपतिम् अमुञ्च्यन्त्यपि-अत्यजन्त्यपि अभिषेकसलिलेन- यौवराज्याभिषेकजलेन आर्द्रदेहं- क्लिन्नशरीरम् तं- चन्द्रापीडम् तत्क्षणम्- तत्समयमेव सञ्चक्राम- प्रविष्टा बभूव अर्थात् चन्द्रापीडः तत्क्षणमेव राज्यसामर्थ्यम् अधिगतवान् इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवाद- तदनन्तर कुछ दिन बीतने पर पुण्य दिवस में मंत्री शुकनास और पुरोहित के साथ राजा (तारापीड स्वयं मङ्गलघट को उठाकर राज्याभिषेक से सम्बन्धित सम्पूर्ण माङ्गलिककार्यों का सम्पादन करके अनेक सहस्र राजाओं से घिरे हुए सभी (प्रयागदि) तीर्थों से, (गङ्गा आदि) सभी नदियों से, सभी समुद्रों से लाये गये (जल से) समस्त औषधियों सें, सभी फलों से, सब (तीर्थों की) मिट्टी से सभी रत्नों से परिगृहीत (युक्त) और आनन्दश्रुजल के मिश्रण से पवित्र जल से पुत्र (चन्द्रापीड) का को अभिषिक्त किया।

जैसे- लता स्वयं द्वारा परिगृहीत वृक्ष को छोड़े बिना दूसरे वृक्ष का आश्रय लेती है वैसे ही राजा तारापीड के शरीर को छोड़े बिना राज्यलक्ष्मी उसी क्षण अभिषेक के जल से भीगी (चन्द्रापीड की) शरीर में सङ्क्रमित हो गयी।

पदार्थ- मीमांसा- ततः तत्पश्चात्, तदनन्तर। कतिपयदिवसपगमे- कुछ दिन बीत जाने पर, कतिपयानि दिवसानि अपगमे- व्यतीते। राजा- तारापीडभूपतिम् नर स्वयंम् –स्वयं ही उत्क्षितः- उठाये गये (उत्+क्षिप् +क्त) अभिषेक हेतु ऊपर उठाये गये। मङ्गलकलश: - मङ्गलघर, मङ्गलाय कलश: (चतुर्थी तत्पुरुष)। शुकनासेन सह- मंत्री शुकनास के साथ। च- और पुरोधसा- पुरोहित के साथ। सम्पादिताशेषराज्याभिषेकमङ्गलम्- राज्यभिषेकसम्बन्धी समस्त मङ्गलकार्य सम्पादित करके, सम्पादित:- निष्पादित: (सम् +पद+क्त+इ) अशेषम्- सम्पूर्ण – संशेषम् इति अशेषम् (नञ् समास, यत् राज्यभिषेकं तत् मङ्गलम्। अनेकनरपति सह परिवृतम्- अनेक राजाओं से घिरा हुआ, अनेकै –बहुभि: नरपतिभि:नृपतिभि: परिवृत्त आवृत्त (परि+वृत् + क्त (तृतीय तत्पुरुष)। सर्वेभ्य: -निखिलाभ्य: सागरेभ्य:समाहृतेन- आहृतेन, सर्वेषधिभि: सर्वभि: ओषधिभि:,सर्वप्रकारकफलैः सर्वमृदिभः- सर्वतीर्थस्थलस्य मृत्तिकाभि:, सर्वरत्नैश्च सर्वविधफलैः सर्वप्रकारकै रत्नै:परिगृहीतेन

स्वीकृतेन ग्रहणी। आनन्दवाष्पजलमिश्रेण आनन्दाश्रु जलमिश्रितै:मन्त्रपूतेन- पुरुषसूक्त मन्त्रै: पवित्रकृतेन वारिणा- जलेन, सुतम्- चन्द्रापीडाख्य सुतम् अभिषिषेच – अभिषेक सम्पन्न किया, (अभि+सिच् +लिट् लकार, प्र०पु०, एक अभि अभिषेक सम्पन्न किया, (अभिषेक के अभिषेक सलिलार्द्रदेहं च- और अभिषेक के जल से भीगे शरीर वाले, अभिषेकसम्बन्धित यत् सलिलं –तेन आद्रीकृतशरीरम्, तं- उस चन्द्रापीड -उस चन्द्रापीड नामक पुत्र को। लतैव = लता की भाँति, 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यर्थ: निजपादपममुञ्चत्यपि- अपने आश्रयभूत वृक्ष को छोडे विना। पादपान्तरं – दूसरे वृक्ष को, अमुञ्चन्त्यपि- न छोडते हुए भी, न मुञ्चत्यपि अमुञ्चन्त्यपि, राज्यश्री राजलक्ष्मी। तत्क्षणमेव- तस्मिन् एव काले सञ्चक्राम – सङ्क्रमणं कृतवती, सङ्क्रमित हो गयी।

विशेष- 1 इस गद्यखण्ड में महाकवि चन्द्रापीड के राज्यभिषेक का वर्णन है।

2. इस गद्यखण्ड में कवि ने राज्यभिषेक सम्बन्धी आवश्यक सामग्रियों का उल्लेख किया है।

बोधप्रश्न

1. लक्ष्मी के मद से ग्रस्त राजा लोग स्वयं को क्या समझते है?
2. राज्यलक्ष्मी के प्रभाव से व्यक्ति में क्या दुर्गुण आ जाते हैं?
3. शुकनास के द्वारा उपदेश के पश्चात् चन्द्रापीड ने क्या किया?
4. राज्याभिषेक के पश्चात् चन्द्रापीड नें कहाँ आधिपत्य स्थापित किया?
5. धूर्त सेवक रूपी वृक किसे ठगते हैं?

-----o-----

इकाई- 6

शुकनासोपदेश से संबन्धित आलोचनात्मक प्रश्न

इकाई की रूपरेखा-

6.1. प्रस्तावना

6.2. उद्देश्य

6.3. शुकनासोपदेश से सम्बन्धित आलोचनात्मक प्रश्न

6.4. बोध प्रश्न

प्रस्तावना-

शुकनासोपदेश के संस्कृत गद्यांशों का संस्कृत व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद के अध्ययन के पश्चात् MAST- संस्कृत के छात्रों को शुकनासोपदेश से सम्बन्धित आलोचनात्मक प्रश्न का अध्ययन प्रस्तावित है। बाणभट्ट एवं शुकनासोपदेश के साहित्यिक मूल्याङ्कन हेतु छात्रों को इस इकाई का अध्ययन अनिवार्य है।

उद्देश्य-

1. इस इकाई के अध्ययन से छात्रों को बाणभट्ट से सम्बन्धित प्रश्नों का बोध होगा।
2. इस इकाई से छात्रों को बाणभट्ट के विषय में प्रचलित सूक्तियों पर आधारित आलोचना का बोध होगा।
3. इस इकाई के अध्ययन से छात्र शुकनासोपदेश के महत्व को जान सकेंगे। छात्रों की रचनात्मकता में वृद्धि होगी।
4. इस इकाई के अध्ययन से छात्र बाणभट्ट की वर्णनाशैली से परिचित होंगे।
5. इस इकाई के अध्ययन से छात्र कवि एवं उसकी कृतियों पर आधारित प्रश्नो के उत्तर देने में सक्षम होंगे।

शुकनासोपदेश से सम्बन्धित आलोचनात्मक प्रश्न।

प्रश्न-1 शुकनासोपदेश के साहित्यिक महत्व को रेखाङ्कित करिये?

उत्तर- महाकवि बाणभट्ट ने कथावस्तु के काल्पनिक होने पर भी इस ग्रंथ में जीव के विविधपक्षों को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। उज्जयिनी के शासक तारापीड के वयोवृद्ध मंत्री शुकनास के द्वारा राजकुमार चन्द्रापीड को युवराजपद पर अभिषेक से पूर्व कुछ व्यवहारोपयोगी शिक्षाएँ देते हैं। इस उपदेश का प्रयोजन बताते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि विषयभोगों के रसास्वाद से दूर निर्मलचित्त व्यक्ति पर ही उपदेश का प्रभाव पड़ता है; अभी युवावस्था के प्रारम्भिक काल में तुम व्यसने और विषयभोगों से दूर होने के कारण उपदेश के उचित पात्र हो। तुम सब विकारों से दूर रहकर शासन करना; यही मेरे इस उपदेश का प्रयोजन है।

इस संदर्भ में युवावस्था में आने वाले दुर्गुणों या विकारों का वर्णन करते हुए राज्यलक्ष्मी सम्पन्न राजाओं पर उनका विशेष प्रभाव बताते हुए कहा गया है कि यह राज्यलक्ष्मी, मादकता मोहकता, चंचलता, वक्रता, निष्ठुरता आदि दुर्गुणों के साथ जन्म से ही रहती है। किसी व्यक्ति के कुल, शील, सदाचार और विद्वता की गणना न करते हुए कुलटा स्त्री की भाँति यह घूमती है। और अनेक प्रयास करने पर भी यह चञ्चला लक्ष्मी चली जाती है। इसकी सङ्गति से मूढबुद्धि वाले राजा लोग सब प्रकार के दुष्टाचरणों से ग्रस्त हो जाते हैं और इसके मोहपाश में बँधे हुए होने से स्वयं के कुल, शील आदि को भूल जाने से अपने पतन का अनुभव नहीं करते। वे मिथ्या माहात्म्य से गर्वित होकर चापलूसों और ठगों के चक्कर में फँस जाते हैं फलतः विवेकी जनों के उपहास के पात्र, गुरुजनों के धिक्कार पात्र और मित्रों के उपालम्भ के पात्र हो जाते हैं। अतएव ऐसा प्रयास करना कि यौवन सुलभ दुर्गुण और दुष्ट लक्ष्मी के वशवर्ती न होकर प्रतापी और सिद्धादेश बनना।

शुकनासोपदेश में महाकवि बाणभट्ट की उदात्तकल्पना वर्णन- सामर्थ्य, विषयाधिकार तथा देशकालातीत उदात्तगुण आदर्श रूप में वर्णित हैं। छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से सारगर्भित उपदेशों की भाषा से कवि के सर्वाधिकार का परिचय मिलता है। आधुनिक युग में युवावर्ग को सन्मार्ग पर लाने में शुकनासोपदेश उस प्रकाशस्तम्भ जैसा है जो उन्हें सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है। इसके सारगर्भित उपदेश

युवावर्ग के मार्गदर्शक जैसा है।

6.3.2प्रश्न- 2 शुकनासोपदेश के पात्रों का चरित्र चित्रण करिये।

उत्तर- महाकवि बाणभट्ट ने अपने पात्रों का संचयन और चरित्र चित्रण बड़ी ही कुशलतापूर्ण किया है। इन पात्रों में राजकुमारी, राजकुमा, महारानी, मंत्री, श्रेष्ठ ब्राह्मण आदि का चित्रण किया है। उन्होंने न केवल लौकिक अपितु अलौकिक (दिव्य) पात्रों का भी चरित्रचित्रण किया है। बाणभट्ट ने अपनी कथावस्तु में उत्तम, मध्यम, अधम सभी श्रेणी के पात्रों का चित्रण किया है। राजा शूद्रक के वर्णन में वे विशेषणों की झड़ी जगा देते हैं; तो चाण्डालकन्या का भी विस्तार से वर्णन करते हैं। शुकनासोपदेश के प्रमुख पात्रों में राजकुमार चन्द्रापीड और मन्त्री शुकनास हैं। जिनका चरित्र चित्रण बाणभट्ट ने, इस प्रकार किया है।

6.3.2.1 चन्द्रापीड- चन्द्रापीड कादम्बरी कथा का नायक है। चन्द्रापीड में बाल्यकाल से ही समस्त राजकुमारोचित गुण है। शिष्ट विश्वविद्यालय में रहकर उसने समस्त विद्याओं का अध्ययन इसके विशेषज्ञ आचार्यों के द्वारा किया है। फलतः समस्त विद्याओं और कलाओं में वह निष्णात है। जैसा कि कहा गया है- "तथा हि पदे, वाक्ये, प्रमाणे, धर्मशास्त्रे, राजनीतिषु, व्यायामविधासु चापचक्रकृपाणशक्तितोमर, परशुगदाप्रभृतिषु सर्वेष्वायुधविशेषेषु, रथचर्यासु, गजपृष्ठेषु, तुरंगमेषु, वीणावेणुमुरजकांस्यतालदर्दुरपुटप्रभृतिषु वाद्येषु, भरतादिप्रणीतेषु नृत्यशास्त्रेषु, नारदीयप्रभृतिषु गान्धर्ववेदविशेषेषु, हस्तिशिक्षायां, तुरगवयोज्ञाने, पुरुषलक्षणेषु, चित्रकर्मणि, यन्त्रच्छेदे, पुस्तकव्यापारे, सख्यकर्मणि, सर्वासुद्यूतकलासु, गन्धशास्त्रेषु, शकुनिरुतज्ञाने, ग्रहगणिते, रत्नपरीक्षासु, दारुकर्मणि, दन्तव्यापारे, वास्तुविद्यासु आयुर्वेदे.....सर्वदेशभाषासु, सर्वसंज्ञासु, सर्वशिल्पेषु, छन्दसु, अन्येष्वपि कलाविशेषेषु परं कौशलमवाप।"

आशय यह है कि चन्द्रापीड ने समस्त विषयों का पूर्णज्ञान बाल्यावस्था में ही प्राप्त कर लिया था, जो उसके लोकनायक होने का संसूचक हैं। जिसे राज्याभिषेक सं पूर्व बाणभट्ट ने विप्रश्रेष्ठ एवं मंत्री शुकनास से उपदेश दिलाकर मणिकाञ्चन संयोग किया। उसके चरित्रनिर्माण में किसी प्रकास का व्याघात न आये; यही इस उपदेश प्रयोजन था।

राजोचित गुणी चन्द्रापीड में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक महापुरुष और सच्चरित्र राजा में होने चाहिए। शौर्य, धैर्य, दयालुता, नम्रता का उसमें समावेश था। पुण्डरीक महाश्वेता के दुखद वृत्तान्त को सुनकर वह उन्हें धैर्य बॉधता है। पिता का उत्तराधिकारी बनने से पहले वह दिग्विजय के लिये प्रस्थान करता है।

आदर्श प्रेमी- सद्गुणों का आकर चन्द्रापीड एक आदर्श प्रेमी भी है। कादम्बरी के दर्शनमात्र से ही वह उसे प्रेम करने लगता है, तथापि वह अपने मन को संयत रखता है। प्रणय में मर्यादाओं का उल्लङ्घन नहीं करता। कादम्बरी को देखकर वह मन में कहता है- "तस्य तु दृष्टकादम्बरी वदनचन्द्रलेखालक्ष्मीकस्य सागरस्येवामृतमुल्ललास हृदयम्। आसीत् चास्य मनसि शेषेन्द्रियाण्यपि वेधसा किमिति लोचनमयान्येव न कृतानि।"

चन्द्रापीड के सौन्दर्य से आकृष्ट हुई कादम्बरी का चित्रण करते हुए बाणभट्ट कहते है कि चन्द्रापीड को देखकर पहले कादम्बरी रोमाञ्चित हुई, तत्पश्चात् आभूषण की ध्वनि हुई; तदनन्तर कादम्बरी स्वयमेव आसन छोड़कर खड़ी हो गयी- दृष्ट्वा च तं प्रथमं रोमोद्गमः, ततो भूषणश्च, तदनु कादम्बरी समुत्तस्थौ।" वस्तुतः चन्द्रापीड जैसे आदर्श लोकनायक को देखकर कादम्बरी का रोमाञ्चित होना स्वाभाविक ही था।

उज्जयिनी लौटने के पश्चात् जब चन्द्रापीड को कादम्बरी की मनोदशा का ज्ञान होता है; तो वह उससे मिलने तो जाना चाहता है; किन्तु गुरुजनों से अनुमति भी चाहता है जो उसके शिष्टाचार का परिचायक है।

आदर्श मित्र- चन्द्रापीड एक आदर्श प्रेमी ही नहीं अपितु आदर्श मित्र भी है। अपने मित्र वैशम्पायन के दुःख से वह दुःखी हो जाता है और उसकी मृत्यु को सुनकर अचेतावस्था में चला जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शुकनासोपदेश में चन्द्रापीड एक योग्य शिष्य, योग्यशासक, आज्ञाकारी पुत्र, आदर्श प्रेमी, आदर्श मित्र के रूप में चित्रित किया गया है। उसमें विनम्रता, उदारता, पराक्रम, शिष्टता, प्रणयभावना, सहृदयता और सच्चें मित्र होने के गुण कूट-कूट कर भरे हैं। अतएव बाणभट्ट का यह नायक महानायक की कोटि में परिगणित होता है।

6.3-2 प्रश्न- 3 कादम्बरी का चरित्र चित्रण करिये?

उत्तर- कादम्बरी कथा की नायिका है। वह एक अप्सरा और गन्धर्व की कन्या है। कादम्बरी एक आदर्श सखी के रूप में चित्रित की गयी है। दया, दाक्षिण्य, लावण्य आदि गुणों का एकत्र संचय है। वह अलौकिक सुन्दरी है। धीर,गंभीर एव संयतस्वभाव होने से वह एक आदर्श और अद्वितीय नायिका सिद्ध होती है। उसका वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहते हैं- "शरदमिव उत्पादितमानसजन्मपक्षिरिवापनतनीलकण्ठमदाम्.....कल्पतरुलतामिव कामफलाप्रदाम्। बाणभट्ट ने कादम्बरी को 'सर्वकामफलप्रदा' कहा है।

कादम्बरी अद्वितीय सुन्दरी है। उसमें स्थित नैसर्गिक सौन्दर्य से जैसे सहृदयों के हृदय को सहसा ही आकृष्ट कर लेती है। इसीलिये वह चन्द्रापीड सहृदयों के हृदय को सहसा ही आकृष्ट कर लेती है।यद्यपि चन्द्रापीड को प्रथम। बार देखते ही उसके द्य में अनुराग आ जाता है। तथापि वह स्त्रीसुलभ लज्जा का परित्याग नहीं करती। चन्द्रापीड के द्वारा प्रेमनिवेदन करने पर भी वह मौन रहती है। चन्द्रापीड के प्रति उसके हृदय में सहज अनुराग हो जाता है। 'अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत् सम्भ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशमभवत्। उरुक्रम्य एव गति रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमवपशो लेभे। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ। अन्तः प्रविष्ट चन्द्रापीड- लोभनैव पपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव।।' जब उसे चन्द्रापीड के निधन का समाचार प्राप्त होता है, तो वह भी देहत्याग करने को तत्पर हो जाती है; परन्तु आकाशवाणी से पुनः मिलने बात सुनकर धैर्य धारण करती है और चन्द्रापीड के पुनर्जीवित होने की प्रतीक्षा करती है। अंत में जब चन्द्रापीड पुनर्जीवित हो जाता है; तो वह आनन्दित हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कादम्बरी सहज और सरल स्वभाव वाली, अद्वितीय सुन्दरी, दयादाक्षिण्य आदि गुणग्राम से अलङ्कृत, विनम्र, शालीन और शिष्ट तथा विलासिनी नायिका है उसके गुणो से सहृदय जन को परमानन्द की अनुभूति होती है। वह पुनः पति के रूप में चन्द्रापीड को प्राप्त करके प्रसन्न हो जाती है।

6.3.3 प्रश्न- 4 कादम्बरी में वर्णित शुकनास का चरित्र चित्रण कीजिए?

उत्तर- आचार्य शुकनास राजा तारापीड के मन्त्री थे। उनमें अमात्य के सारे गुण

विद्यमान थे। मंत्री होने के साथ ही वे वेदवेदाङ्ग और नीतिशास्त्र में पारङ्गत विद्वान् थे। उनकी राजनीतिक निपुणता के कारण राजा तारापीड ने समस्त राज्यभार उनको सौप रखा था। अपने बुद्धिकौशल से वह राज्यशासन का संचालन करते था। उनका वर्णन करते हुए महाकवि बाणभट्ट कहते हैं-

"शुकनासोऽपि महान्तं राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। यत्रैव राजा कार्याणि अकार्षीत् तद्वद् असावपि द्विगुणीकृत'' प्रजानुरागो राजकार्याणि चक्रे।

दृढ़ राजभक्ति- मंत्री पद पर नियुक्त शुकनास राजा का शुभचिन्तक है। राजभक्ति और प्रजा के प्रति उत्कट अनुराग के कारण वह सबके हृदय का सम्राट है। सुख-दुख आदि सभी अवस्थाओं में वह राजा का साथ देता है। विषयज्ञान में वह अद्वितीय है। बहुज्ञता उसका मुख्य गुण है। समय-समय पर वह इसका प्रदर्शन भी करता है। राजा के द्वारा देखे गये स्वप्न का विचार करके उसके फल का वर्णन करता है। वह कहता है- "देव सम्पन्नाः सुचिरादस्माकं प्रजानां च मनोरथाः कतिपयैरैवश्वाहोभिः असदेहमनुभवेति स्वामी सुतमुखकमलावलोकनसुखम्। अवितथफला हि प्रायो निशावसानसमयद्रष्टा भवन्ति स्वप्नाः।"

कुशल उपदेष्टा- कादम्बरी में राज्याभिषेक से पूर्व राजकुमार चन्द्रापीड को दिया गया शुकनास का उपदेश संस्कृत साहित्य का वह अमरसंदेश है; जो आचरित किये जाने पर समस्त मानवजाति के लिये कल्याणकारी हो सकता है। वस्तुतः कादम्बरी में दिया गया शुकनासोपदेश आज भी प्रासङ्गिक है। इसका पालन करने पर राष्ट्र और मानव दोनों का उत्थान अवश्य होगा। युवावस्था में लक्ष्मी के मद के कारण राजाओं में उत्पन्न होने वाले दोषों के प्रति सावधान करते हुए वे कहते हैं- गर्भेश्वरत्वम् अभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तत्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयानामेकैकमपि एषामायतनम् किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः।.....इन्द्रियहरिणहारिणी च सततं दुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्य मानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः।" (शुकनासोपदेश)

आशय यह है कि गर्भ (जन्मा) से ही ऐश्वर्य प्राप्ति, नवयौवन, अद्वितीय सौन्दर्य

दिव्यशक्तियाँ- ये सभी महान् अनर्थ की परम्परायें हैं। इनमें से एक का भी अहङ्कार अशिष्टता का आगार है फिर इनका एकत्र समवाय हो तो क्या कहना। शास्त्रजल से प्रक्षालित होने पर भी युवावस्था में प्रायः बुद्धि मलिन हो जाती है, युवको की दृष्टि रागयुक्त हो जाती है। विषयोपभोग की लालसा (मृगतृष्णा) इन्द्रियरूपी हिरण को हर लेती है। नवयौवन से कषायित चित्तवाले मनुष्य को जल की भाँति आस्वादित किये जाने वाले विषयभोगों के रस मधुर प्रतीत होते हैं।

युवावस्था के दोषो को बताने के पश्चात् शुकनास राज्यलक्ष्मी के कारण उत्पन्न अहङ्कार से उत्पन्न दोषों को बताते हुए कते हैं- न ह्येवंविधमपरिचितम् इह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुखेन परिपाल्यते। दृढ़गुणसन्दाननिष्पंदीकृतापि नश्यति। उद्दामदर्पभरसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृतापि अपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलंपश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति।.....एवं विधया चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति।

आशय यह है कि दुष्ट लक्ष्मी का अहङ्कार करने वाले राजाओं में यह राज्यलक्ष्मी प्रमाद उत्पन्न करती है। इसके गर्व में चूर राजा उचित-अनुचित विचार त्याग कर कर्तव्य-अकर्तव्य के ज्ञान से शून्य हो जाते हैं। स्वयं को ईश्वर मानकर निषेध्य कर्मों को करते हैं। अहङ्कार से ग्रस्त ऐसे राजाओं का अधःपतन होता है। चाटुकार उनकी झूठी प्रशंसा करके उन्हें ठगते हैं। यह लक्ष्मी सैकड़ों प्रयास के बाद भी उन्हें छोड़ कर चली जाती है। गुरुजनों का ऐसे लोग आदर नहीं करते, मित्रों का सत्कार नहीं करते। अपनी आज्ञा को वर प्रदान जैसा और स्पर्श को पवित्र मानते हुए ये अधःपतन को प्राप्त हो जाते हैं।

निष्कर्ष यह है कि आचार्य शुकनास विद्वान् मेधावी, दृढ़ राजभक्तन, प्रजाप्रेमी, नीतिशास्त्र में पारङ्गत, सभी विषयों के ज्ञाता, अच्छे प्रशासक तथा निस्पृह धर्म के उपदेशक के रूप में वर्णित है। उनका उपदेश कादम्बरी कथा का निष्कर्ष (प्राण) है। सामान्य जनों को सन्मार्ग दिखाने वाला है। इस का पालन करने वाला व्यक्ति अपने जीवन के निर्माण के साथ ही राष्ट्र निर्माण में सक्षम होकर उन्नति के शिखर पर आरुढ

हो सकता है।

6.3.4 प्रश्न- 5 पुण्डरीक का चरित्र चित्रण करिये?

उत्तर- यह कादम्बरी कथा का उपनायक है। वह लक्ष्मी का मानस पुत्र है। चन्द्रापीड का सखा है। वह प्रथम जन्म में पुण्डरीक के रूप में, दूसरे जन्म में वैशम्पायन के रूप में तथा तीसरे जन्म में शुक के रूप में कथा के मध्य प्रवेश करता है। उसका वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहते हैं- "अलङ्कारमिव ब्रह्मचर्यस्य, यौवनमिव धर्मस्य, विलासमिव सरस्वत्याः, स्वयंवरपतिमिव सर्वविद्या नाम, निदाघकालमिव साषाढम्, हिमसमयकाननमिव, स्फुटितप्रियङ्गुमञ्जरीगौरम्, मधुमासमिव कुसुमधवलितभूतिभूषितमुखम् आत्मानुरूपेण सवयसा अवरेण देवतार्चनकुसुमान् उच्चिन्वता तापसकुमारेणानुगतम्, अतिमनोहरम्, स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम्।।"

पुण्डरीक का चरित्र-चित्रण बाणभट्ट ने एक कामासक्त व्यक्ति के रूप में किया है। इसी दुर्गुण के कारण उसे पुनः पुनः मृत्यु का वरण करना पड़ता है और कष्ट उठाना पड़ता है। यह बात तीनों जन्मों में दृष्टिगत होती है। महाश्वेता को देखकर उसकी मनोदशा इस प्रकार की हो जाती है- "उत्सृष्ट सकलव्यापारतया लिखितमिवोत्कीर्णमिव स्तम्भितमिवोपरतमिव, प्रसुप्तमिव, योगसमाधिस्थमिव निश्चलमपि स्ववृत्ताच्चलितम्, एकाकिनमपि मन्मथाधिष्ठितम्, सानुरागमपि पाण्डुतामावहन्तम्, शून्यान्तःकरणमपि हृदयनिवासिदयितम्, तूष्णीकमपि कथितमदनवेदनातिशयम् शिलातलोपविष्टमपि मरणे व्यवस्थितम्.....।

आशय यह है कि पुण्डरीक के चरित्र-चित्रण में बाणभट्ट ने वह उदात्तता नहीं दिखायी जो नायक चरित्र में दिखायी है; फलतः प्रतिनायक होते हुए भी विकसित नहीं है। चरित्र में कामपरायणता का आधिक्य होने से उसका चरित्र विकसित नहीं हो पाया। इसी कारण वह बारम्बार मृत्यु को प्राप्त करता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है पुण्डरीक का चित्रण कामासक्त के रूप होने से विकसित न होकर अपरिपक्व व्यक्ति जैसा है। इसी दुर्गुण के कारण उसे बारम्बार जन्म और मृत्यु का दुख भोगना पड़ता है।

6.3.5प्रश्न- 6 कादम्बरी में वर्णित महाश्वेता का चरित्र-चित्रण करिये?

उत्तर- कादम्बरी कथा की द्वितीय नायिका महाश्वेता है। उसका भी सम्बन्ध गन्धर्व लोक से था। वह अत्यन्त गौरवर्ण की सुन्दरी नायिका है। कादम्बरी में वर्णित महाश्वेता एक व्रतधारिणी और अतिथि परायणा कन्या है। वह कादम्बरी की सखी है। प्रारम्भ में उसमें भी नवयौवन सुलभ चपलता थी उसके सौन्दर्य के वर्णन में कवि क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्। फलतः प्रथम दर्शन होते ही पुण्डरीक से प्रेम कर बैठती है। प्रारम्भ में यह प्रणय सामान्य होता है; किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि पुण्डरीक ने उसके वियोग में प्राण त्याग देता है, तो वह अपने को धिक्कारती है। वह भी प्राणत्याग करना चाहती है। जैसे ही उसे कादम्बरी के प्राणत्याग करने के निश्चय का पता लगता है उसका चरित्र खरे सोने की भाँति परिमार्जित हो उठता है। आकाशवाणी पर विश्वास करती हुई वह धैर्यपूर्वक अपने प्रियतम के मिलने की प्रतीक्षा करने लगती है। पहले विवाह न करने की प्रतिज्ञा करने वाली कादम्बरी चन्द्रापीड को देखकर आकृष्ट हो जाती है किन्तु महाश्वेता अपने निश्चय पर चट्टान की भाँति अडिग रहती है। वैशम्पायन जो कि उसका पूर्वप्रेमी ही था- के द्वारा प्रणयनिवेदन करने पर वह उसे शुक हो जाने का शाप दे देती हैं। ऐसा करके वह अपने प्रेमी को खोने के साथ ही कादम्बरी के दुर्भाग्य का भी कारण बन जाती है, क्योंकि अपने मित्र वैशम्पायन के निधन की सूचना से चन्द्रापीड प्राणत्याग देता है।

महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी से अत्यधिक अनुराग रखती है। कादम्बरी के विवाह न करने की प्रतिज्ञा से वह बहुत दुखी है; वह अपनी सखी का विवाह करके उसे सुखी बनाना चाहता है। महाश्वेता व्यवहारकुशल, धैर्यशालिनी, एवं गम्भीर युवती है। वह ताम्बूलकरङ्कवाहिनी को चन्द्रापीड को ताम्बूल देने की आज्ञा देती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बाणभट्ट ने कादम्बरी कथा में महाश्वेता का चित्रण, शिष्टता, गम्भीरता, सुन्दरता, अतिथिपरायणता अनन्य प्रेमी, कुशल शिष्टाचारपरायण ,सुन्दर और ,आदर्श नायिका के रूप में किया है। जो दृढ़निश्चय वाली है तथा अनन्य प्रेम से युक्त है।

6.4 प्रश्न- 7 बाणभट्ट के द्वारा कादम्बरी में किये गये चरित्र-चित्रण की विशेषता बताइये?

उत्तर- बाणभट्ट के द्वारा कादम्बरी में वर्णित पात्रों का चित्रण परम्परागत होते हुए भी स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में यदि एक दुर्बल है; तो दूसरा सबल चरित्र वाला है। राजकुमार चन्द्रापीड जहाँ धीर- गम्भीर और सबल चरित्र वाला नायक है, वहीं वैशम्पायन एक दुर्बल चरित्र वाला सामान्य कोटि का प्रेमी नायक है। जो महाशवेता को देखते ही प्रणयनिवेदन कर बैठता है। इसी प्रकार पक्षियों का आखेट करने वाला निर्दयी शबर (भील) जहाँ निरन्तर हिंसा करने वाला व्यक्ति है, वही अपनी दयालुता से 'अकारणमित्र' ऋषि कुमार हारीत का चरित्र है। जो मार्ग में पड़े शुक उठाकर पत्तों की छाया में रखकर उसे जल पिला कर उसकी प्राण रक्षा करता है।

कुछ आलोचक बाणभट्ट के पात्रों के चित्रण में अस्वाभाविकता सिद्ध करते है। उनका मत है कि बाणभट्ट ने अपनी कथा में जैसे पात्रों का चयन किया है जो ठीक नहीं हैं। जो पात्र कवि की दृष्टि में महान् है; उसमें वे सारे गुणों का समावेश कर देते हैं। कवि उसके वर्णन से तृप्त ही नहीं होता। जैसे- ऋषि जाबालि का चरित्र। एवं दुष्ट स्वभाव वाले पात्र में कोई सद्गुण ही नहीं दिखाते, अर्थात् अच्छाई और बुराई का मिश्रण बाणभट्ट के पात्रों में नहीं दिखायी देता।

तथापि यहा कहा सकता है कि महाकवि बाणभट्ट ने अपनी अद्वितीय विदग्धता प्रतिभा एवं काव्यकौशल से कथा के पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता लाने का महान् प्रयास किया है और उन्हें इस क्षेत्र में पूर्ण सफलता भी मिली है। अतएव "वाणी बाणो बभूव ह" यह उक्ति बाणभट्ट पर अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। अर्थात् स्वयं सरस्वती वाग्देवता के रूप में बाणभट्ट के वेश में अवतरित हुई; यह किम्बदन्ती बाणभट्ट पर पूर्णतः खरी उतरती है।

6.5प्रश्न- 8 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की व्याख्या करिये अथवा 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' उक्ति की समीक्षा करिये?

उत्तर- 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की मर्यादा का पालन करने वाले बाणभट्ट का नाम गद्यकारो में एवं गद्यसाहित्य में जाजवल्यमान रत्न जैसा है। अपने वर्णनों के द्वारा बाणभट्ट एक विराट् परिदृश्य को अङ्कित करके यह सिद्ध कर देते है कि सरस्वती (वाणी) स्वयं बाण के रूप में इस धरा पर अवतीर्ण हुई थी। उनकी वर्णनकला अद्वितीय है। वे प्रतिपाद्य विषय की छोटी से छोटी विशेषताओं को अपने वर्णन से साकार कर देते

हैं। चाहे वन का वर्णन हो या वनस्यति का, नगर का वर्णन हो या राजमहल का, लोकाचार हो या शिष्टाचार सभी विषयों पर वे अपने ज्ञान प्रतिभा से सूचनाओं का ऐसा ढेर लगा देते हैं कि उनके कोश न से पाठक स्तब्ध रह जाता है। संसार की कोई ऐसा वर्ण्यवस्तु न होगी; जिसे बाणभट्ट ने अपनी वर्णनाकला का विषय न बनाया हो। अतएव "बाणोच्छिष्टम् जगत्सर्वम्" यह उक्ति उनके विषय में प्रसिद्ध हो गयी।

यह वर्णन चाहे चाण्डालकन्या का हो या विन्ध्याटवी का; शबरसेनापति वर्णन हो या बूढेशबर का राजाशूद्रक के राजदरबार का हो या महर्षि जाबालि के तपोवन का अथवा कादम्बरी या महाश्वेता का हो या चन्द्रापीड अथवा वैशम्पायन का- सभी प्रसङ्गों के वर्णन विश्वसाहित्य के श्रेष्ठवर्णनों में उनकी गणना होती है। वे उपमा और उत्प्रेक्षा की ऐसी झडी लगा देते हैं कि इतिहास, पुराण, आख्यान, तीर्थ सभी का विस्तृत वर्णन उनके फलक पर विद्यमान होता है।

विंध्याटवी की उपमा वे ऐसी प्रलयवेला से देते हैं, जिसमें महावराह अपनी दाढ़ों से पृथ्वीमण्डल को खोद रहे हैं। अथवा दशमुख की नगरी लङ्का को चंचल वानरसमूह तोड़-फोड़ रहे हैं। विंध्याटवी कही विवाहभूमि प्रतीत होती है; तो कहीं उसमें हरे कुश, शमी, समिधाएँ और पलाशो की पङ्क्तियाँ सुशोभित हो रही हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को बाण अपने वर्णन से अनंत सौन्दर्य प्रदान कर देते हैं।

'क्वचित् प्रलयवेलेव महावराहद्रंष्टासमुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुल वानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला, क्वचिदनिवृत्तविवाहभूमिरिव हरितकुशसमित्शमीजलाशशोभिता, क्वचिदुन्मत्त मृगपतिनादभीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्ते भव कोकिलवकुलकल प्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा....।' (का. विन्ध्याटवी वर्णन)

जब राजा शूद्रक व्यायाम करते हैं; तो उनके वक्षस्थल से श्रमजनित पसीनें बूदें टूटी हुई मुक्तामाला की मोती जैसे प्रतीत होते है।

"स तस्यां च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृकतमधुख्यायामः श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषद्गलित सिन्धुवारकुसुममञ्जरी विभ्रमाभिः उरसि निर्दयश्रमच्छिन्नहारविगलितमुक्ताफलप्रकारानुकारिणीभिः,
ललाटपट्टकेऽष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसिदमृतबिन्दुबिडम्बनीभिः,

स्वेदजलकणिकासन्ततिभिरलङ्क्रियमाणभूर्तिः.....। (का- सभाभङ्ग वर्णन)

इसी प्रकार चाण्डालकन्या को बाणभट्ट ने उपमानों और उत्प्रेक्षाओं के द्वारा संसार के सारे अनुपम सौन्दर्य से मंडित कर साकार कर दिया है-

"असुरगृहीतामृतापहरण कृतकपटपटुवेशविलासिनी वेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, सञ्चारिणीमिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्, आगुल्फावलम्बिना नीलकञ्चुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशकविरचितावगुण्ठानाम्, नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम्, एककवर्णवसक्तदन्तपत्तप्रभाधवलितकपोलमण्डलाम्..... अचिरोपरूढ यौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिभानिमेषलोचनो दंदर्श।' (काद०, चाण्डालकन्या वर्णन)

महाश्वेता और कादम्बरी जब अपने प्रियतम के निधन की सूचना पाती हैं; तो उनका विलाप हृदयविदारक हो जाता है। महाश्वेता और कादम्बरी के सौन्दर्य वर्णन में बाणभट्ट उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं। बाणभट्ट ने इनके प्रणय के चित्रण में इनकी मनोदशा का जैसा सूक्ष्म चित्रण किया है; वैसा अन्यत्र नहीं प्राप्त होता यह कवि की प्रतिभा का परिचायक है।

जरद्रविणधार्मिक का वर्णन इनकी शिष्ट हास्यप्रतिक्षा को दर्शाता है।

बाणभट्ट के वातावरण और वर्ण्यविषय के अनुकूल बिम्बों की शृङ्खला पिरोने में बाणभट्ट का काव्यकौशल पाठक को चमत्कृत कर देता है। इसी प्रकार नगर या राजसभा का चित्रण करते समय यदि वे जहाँ विलासितापूर्ण उपमानों और अप्रस्तुत विधानों की लम्बी परम्पर। की सृष्टि करते हैं। वही तपोवनों के शांत परिवेश वर्णन उनकी लेखनी में अद्भुत गरिमा और पावनता भर देते हैं। यथा कादम्बरी में जाबालि के तपोवन का संध्यावर्णन द्रष्टव्य है-

"क्वापिं विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरिशोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डल-धारिणी हंसपतिदुकूलपरिधाना मृणालधवल यज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयभुद्व-हन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत् (काद० जाबालि तपोवन वर्णन्)

बाणभट्ट की एक विशेषता यह भी है कि वे अपनी कल्पना के लोक को इतना

वास्तविक रूप दे देते है कि हमारा उनके पात्रो के साथ साधारणीकरण हो जाता है। हम उनके साथ उठते ,बैठते, वार्ता करते हुए उसी में रम जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कादम्बरी में वर्णित लोक यथार्थ है। बाण की काव्य प्रतिभा को उनके द्वारा प्रयुक्त वक्रोक्तियाँ प्रकट करती हैं उनके द्वारा प्रयुक्त व्यञ्जना की छटा निराली है। उनके द्वारा प्रयुक्त दीपक, उपमा और उत्प्रेक्षालङ्कार तथा परिसंख्या के सूत्र उनके काव्य को और अधिक समृद्ध कर देते हैं।

बाण अपने विषयों के शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध का बहुआयामी विविध रंगों से सुसज्जित संसार रूप विषय का जीवन्त चित्र हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों की विविध चेष्टाएँ, भावभङ्गिमाएँ और संसार के अनेक कार्यव्यापार इसमें मिश्रित हो जाते हैं। उनकी शब्दसंसार की सृष्टि निरन्तर लयात्मक गति करती है।

बाणभट्ट का सौन्दर्यबोध रंगों की अनोखी छटा बिखेरती है। बाण का प्रभातकालीन सूर्योदय वर्णन द्रष्टव्य है- "एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते गगनतले कमलिनीमधुरक्तपक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनी पुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि.....पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिः समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे.....। (कादम्बरी- प्रभातवर्णन)

बाणभट्ट ने केवल रंगों (वर्णों) ही नहीं अपितु भाँति-भाँति की ध्वनियों और कोलाहलों का भी वर्णन भी किया है। वे लोगों के द्वारा की जाने वाली अनेक चेष्टाओं का भी उसी कुशलता से वर्णन करते हैं; जैसे अन्य दृश्यों का करते हैं।

राजा शूद्रक के सभा विसर्जन के समय होने वाली ध्वनियों और राजाओं की विविध चेष्टाओं का वर्णन कवि ने बड़ी सूक्ष्मता और सहजता से किया है इसकी एक झाँकी द्रष्टव्य है-

"अथ चलति महीपतौ अन्योन्यमतिरभससञ्चलन चालिताङ्गपत्रभङ्गकरकोटिपारीतानेकपटानाम्, आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम् अंसस्थोल्लसित कुङ्कुमपरवासधूलिपटलपिञ्जरीकृतदिशाम्, आलोलमालती-कुसुमशेखरोत्पलदलिकदम्बकानाम्, अर्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैः चुम्बमान-गण्डस्थलानां, गमनप्रणाभलालसानाम्, अहमहनिअकथा

वक्षस्थलप्रेङखोलियाहारलता-नाम् उत्तिष्ठतामासीदतिमहान् सम्भ्रमो महीपतीनाम्। (कादम्बरी, सभाभङ्ग वर्णनम्)।

आशय यह है कि शूद्रक की सभाविसर्जन के समय प्रणाम करते हुए राजाओं में पहले मैं, पहले मैं की ऐसी भगदड़ हुई की राजाओं के वक्षस्थल के हार हिलने लगे- इत्यादि दृश्यों को बाण ने बड़ी सूक्ष्मता से वर्णन किया है।

शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को उपदेश देने के समय बाणभट्ट लक्ष्मी की दुष्टतापूर्ण चेष्टाओं का ऐसा शब्दचित्र खीचते हैं कि पाठक को लक्ष्मी से वितृष्णा सी होने लगती है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम् उच्चैःश्रवसः चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिः, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैर्ष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गाता। न ह्येवंविधमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुखेन परिपाल्यते। दृढगुणसंदाननिष्पंदीकृतापिः नश्यति।"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बाणभट्ट के वर्णनों में कल्पना, वर्णनासामर्थ्य तथा अलौकिक उदात्तगुण आदर्शरूप में प्रकटहुआ है। छोटे-छोटे वाक्यों वाले उपदेश की भाषा कवि के सर्वविषयाधिकार का परिचय देती है। वर्णन के समय कवि के द्वारा अनेक उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कवि के भाषागत अधिकार और वैदर्भी पाञ्चाली मिश्रित शैली के कारण जो मनोहर चित्त खीचती है;उससे सिद्ध होता है कि बाणभट्ट के द्वारा उच्छिष्ट रूप में छोड़े गये विषयों का ही आगे के कवियों ने वर्णन किया। उनके वर्णनाकौशल, और भाषागत नैपुण्य को दृष्टि में रख कर ही 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' अथवा 'वाणी बाणो बभूवह।' जैसी उक्तियाँ प्रचलित हुई थी। वस्तुत गद्यकाव्य की रचना में बाणभट्ट अद्वितीय है। उनकी किसी अन्य से तुलना उचित नहीं है। उनके गद्यकाव्य को आदर्श मानकर परवर्ती कवियों ने गद्यकाव्यों की रचना का प्रयास किया है; यह बाणभट्ट की अन्य विशेषता है।

बोध-प्रश्न-

1. बाणी बाणो बभूव है उक्ति किसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है?
2. बाणभट्ट किस शैली के कवि है?
3. शुकनासोपदेश में प्रमुख पात्र कौन से हैं?
4. बाण के प्रकृतिवर्णन की क्या विशेषता है?
5. संस्कृत गद्यकाव्य में बाणभट्ट का क्या योगदान है?

-----o-----